ISSN No. 2582-9548

nbt.india
एकः सूते सकलम्

पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष – 8 ◆ अंक - 5 ◆ सितंबर - अक्तूबर 2023 ◆ मूल्य ₹40.00

पारंपरिक विज्ञान विशेषांक

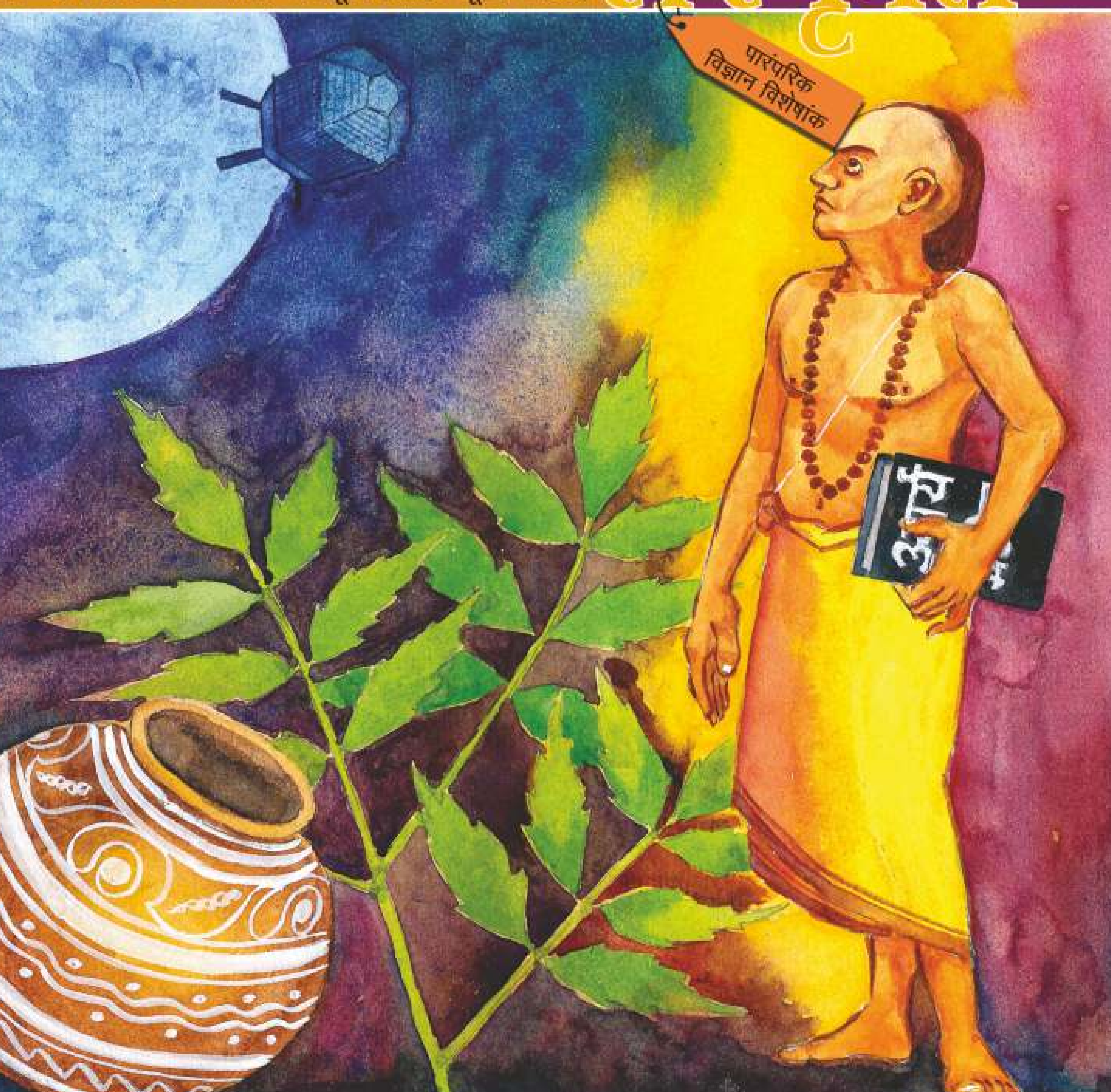

• भारतीय परंपरा में पर्यावरण विज्ञान • लीलावती • हिमालय का एलोरा • भारत के प्राचीन वैज्ञानिक

• काशी में लिखे गए थे सर्जरी के पहले पन्ने • शून्य की खोज विश्व की सांझी विरासत

साहित्यिक गतिविधियाँ

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'द रामपुर रजा मिस्ट्री' का विमोचन करती हुईं माननीय राष्ट्रपति श्रीमती द्रोपदी मुर्मू। यह पुस्तक मंजिरी प्रभु द्वारा लिखित है।

केंद्रीय शिक्षा मंत्री ने किया 'बौद्धिक विरासत' परियोजना के प्रथम चरण में प्रकाशित पुस्तकों का विमोचन

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार की 'बौद्धिक विरासत' पहल के अंतर्गत, श्री धर्मेंद्र प्रधान, माननीय केंद्रीय शिक्षा एवं कौशल विकास और उद्यमिता मंत्री ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित पाँच पुस्तकों के संग्रह का विमोचन 30 जुलाई, 2023 को प्रगति मैदान में 'अखिल भारतीय शिक्षा संगमम 2023' के मंच से किया। शिक्षा राज्य मंत्री डॉ. सुभाष सरकार और श्री के. संजय मूर्ति, सचिव, उच्च शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार भी मंचासीन थे। इस अवसर पर शोध संस्थानों के प्रमुख प्रो. अभय करंदीकर, निदेशक, आईआईटी-कानपुर, उ.प्र.; प्रो. बद्री नारायण, निदेशक, जीबी पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान; श्री वेदमणि तिवारी, सीईओ, राष्ट्रीय कौशल विकास निगम; प्रो. वी. कामकोटि, निदेशक-आईआईटी मद्रास और श्री युवराज मलिक, निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत उपस्थित थे।

'बियॉन्ड बाउंड्रीज : ए स्टडी ऑफ सोशल इंपैक्ट ऑफ मन की बात', 'पॉलिसीस फॉर द पुअर एंड मार्जिनल्स : ए स्टडी ऑफ गरीब कल्याण स्कीम्स इन इंडिया' गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान द्वारा किए गए शोध पर आधारित हैं। नवीनीकृत ऊर्जा स्रोतों के दोहन और जीवाश्म ईंधन पर अपनी निर्भरता को कम करने के प्रयास के शोध पर आधारित पुस्तक 'रिन्यूबल एनर्जी जनरेशन : ए स्टडी ऑफ ग्रीन एनर्जी एंड इट्स सस्टेनेबल यूज इन इंडिया' आईआईटी-कानपुर से, 'डेवेलपमेंट, नॉलेज रिसोर्स एंड मेकिंग न्यू इंडिया : ए डायलाग, डॉक्यूमेंटेशन एंड रिसर्च प्रोग्राम' राष्ट्रीय कौशल विकास निगम द्वारा तथा 'नया भारत : ए स्टडी ऑफ इंफ्रास्ट्रक्चर, कम्युनिटी एंड डेवेलपमेंट' नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इंडस्ट्रियल इंजीनियरिंग द्वारा किए गए अध्ययन पर आधारित है।

मुद्रित किताबों का अस्तित्व कभी खत्म नहीं होगा—प्रो. कुमुद शर्मा

"किताबें हमारे जीवन का जरूरी हिस्सा हैं। वे अँधेरे में रोशनी देती हैं। किताबों से अच्छा कोई मित्र नहीं होता। आप यदि अच्छी किताबों के बीच में हैं तो आपको तनाव नहीं होगा। आँकड़े बताते हैं कि भारत में पाठकों की संख्या सबसे ज्यादा है। हालाँकि ई-बुक्स का जमाना है, लेकिन मुद्रित पुस्तकों का अस्तित्व कभी खत्म नहीं होगा। किताबें आपके संग-संग चल सकती हैं। ये आपका जीवन बदल सकती हैं।" उक्त उद्गार डॉ. कुमुद शर्मा, उपाध्यक्ष, साहित्य अकादेमी ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के 67वें स्थापना दिवस समारोह में यानी 01 अगस्त, 2023 को व्यक्त किए। वे 'समकालीन समाज में पुस्तक एवं पठन-रुचि की भूमिका' विषय पर संबोधित कर रही थीं। उन्होंने कहा कि जब हम पुस्तकों की बात करते हैं तो इसमें लेखक, प्रकाशक और पाठक समाविष्ट होते हैं। पुस्तकों ने लंबी यात्रा की है। आज का समाज बदला हुआ है क्योंकि हम वैश्वीकरण के नए युग में हैं। ऐसे में अभिव्यक्ति के नए द्वार खुले हैं। ऐसे समय में लेखक का लिखना नहीं रुक सकता, क्योंकि शब्द की एक सत्ता होती है।

इस अवसर पर न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने कहा कि वर्ष 1957 से अभी तक प्रगति के संदर्भ में हमने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। प्रतिवर्ष कुछ-न-कुछ नया किया है और आगे भी नया करने का संकल्प किया है। न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि हमने न्यास की प्रगति में हर दृष्टि से कई गुना वृद्धि की है। गंगा परिक्रमा हमारी सबसे बड़ी पुस्तक यात्रा है, यह एक सुखद अनुभूति है। हम जमीन के आखिरी छोर तक पहुँचने की क्षमता रखते हैं। 'यूनाइटेड कलर ऑफ इंडिया' के रूप में हम अपना काम करेंगे। अंत में न्यास की मुख्य संपादक और संयुक्त निदेशक ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

ISSN NO. 2582–9548

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष-8; अंक-5; सितंबर-अक्तूबर, 2023

>>पारंपरिक विज्ञान विशेषांक<<

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
विजय कुमार

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
रोहित शुक्ला

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और सालासर इमेजिंग सिस्टम्स, ए-97, सेक्टर-58, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

इस अंक में

संपादकीय	*प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा*	2
लेख	**चरक संहिता और भारतीय परंपरागत चिकित्सा** *—डॉ. धनंजय चोपड़ा*	4
आलेख	**भारतीय गणित और नक्षत्र-विज्ञान के अग्रणी नायक** *—राजेंद्र भट्ट*	7
लेख	**भारतीय परंपरा में पर्यावरण विज्ञान**—*डॉ. मुरारी लाल अग्रवाल*	10
लेख	**मिट्टी के बरतनों में छिपा है भारतीय पारंपरिक विज्ञान** *—सुनील कुमार महला*	13
आलेख	**परमाणुवाद के भारतीय जनक : कणाद**—*कपिल मेवाड़ा*	17
लेख	**गाँवों से भी मिटने लगीं लोक धारणाएँ**—*मनोज कुमार कपरदार*	19
लेख	**लीलावती**—*ध्रुव सचिन पटवर्धन*	21
आलेख	**भारत के प्राचीन वैज्ञानिक**—*किशोर दिवसे*	24
आलेख	**हिमालय का एलोरा**—*सुशांत भारती*	27
लेख	**पारंपरिक ज्ञान : वृक्षायुर्वेद**—*पंकज चतुर्वेदी*	29
शब्द ज्ञान	**आओ भारतीय भाषाएँ सीखें**	32
आलेख	**काशी में लिखे गए थे सर्जरी के पहले पन्ने** *—डॉ. यतीश अग्रवाल*	34
लेख	**शून्य की खोज विश्व की सांझी विरासत**—*दिनेश मंडोरा*	38
चर्चित पुस्तक	**प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में भौतिक शास्त्रीय विचार** *—नारायण गोपाल डोंगरे, शंकर गोपाल नेने*	42
लेख	**पारंपरिक जलस्रोत : संकट की घड़ी और लोकविज्ञानियों की स्मृति**—*डॉ. धीरेंद्र प्रताप सिंह*	45
लेख	**बस्तर में लोक ज्योतिष द्वारा वर्षा का अनुमान**—*हरिहर वैष्णव*	48
पुस्तक समीक्षा		52
साहित्यिक गतिविधियाँ		61
पुस्तकें मिलीं		63

रचनात्मकता को बढ़ाने वाली शिक्षा

(फाउंडेशनल शिक्षा के संदर्भ में)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 को घोषित हुए तीन वर्ष हो गए हैं, पर अभी भी शिक्षा नीति में घोषित कई महत्वपूर्ण विषयों पर देश में व्यापक स्तर पर विचार मंथन की लंबी प्रक्रिया चल रही है। इन विषयों में एक विषय यह भी है कि क्या वर्तमान शिक्षा रचनात्मकता को बढ़ाने में सक्षम है?

रचनात्मकता है क्या? रचनात्मकता सकारात्मक सोच है, वह सृजनशील है, उसमें नकारात्मकता का अभाव है। रचनात्मकता बहुत व्यापक है, यह शिक्षा तक सीमित नहीं है। स्वयं प्रकृति और उसकी हर संरचना रचनात्मक है, हमारा जीवन रचनात्मक है। नए चिंतन में, नए सृजन में और नए कार्यों में जो सकारात्मक है, वह रचनात्मक है। इसमें शुभ का विचार है, संकीर्णता का अभाव है। रचनात्मकता व्यक्ति के चिंतन, उसके व्यवहार और उसके कार्यों को गति देने वाली, उसे दिशा देने वाली तथा प्रभावित करने वाली व्यक्ति में अंतर्निहित मूल प्रेरणा है।

व्यक्ति का समग्र विकास (होलिस्टिक डेवेलपमेंट) उसकी रचनात्मक सोच पर निर्भर है। रचनात्मकता व्यक्ति के कार्यों और चिंतन में परिलक्षित होती है। वह सामाजिक विकास और सामाजिक सौहार्दता की पहली शर्त है। राष्ट्रीय एकता की स्थापना भी तभी संभव है जब समग्र समाज की सोच रचनात्मक हो। जब तक हम छिद्रान्वेषण करते रहेंगे तथा नकारात्मक सोच को हावी होने देंगे तब तक राष्ट्रीय एकता संभव नहीं है।

सृष्टि के प्रारंभ से लेकर अभी तक का मानव विकास रचनात्मकता का ही परिणाम है। आदिमानव ने हजारों वर्ष पूर्व पत्थरों की रगड़ से निकली चिनगारी को कौतूहल की दृष्टि से देखते हुए उसके महत्व को समझा और उसने चिनगारी का रचनात्मक उपयोग अपने जीवन में किया। इस एक प्रयोग ने मनुष्य के भोजन के तरीके को बदल दिया। हमारा भोजन का तरीका जानवरों से अलग हो गया। अब हम भोजन को आग पर पका कर खाने लगे, ऐसा करके हम पशुओं से अलग हो गए। इस रचनात्मक दृष्टि और प्रयोग ने हमारे जीवन को बदल दिया। मानव जाति के इतिहास में यह बहुत बड़ी और निर्णायक घटना है। इसी प्रकार आदिमानव ने यह कैसे किया, मालूम नहीं, पर उसके जीवन में एक क्षण ऐसा आया कि उसने गोल पहिए का प्रयोग किया और उसे अपने दैनिक जीवन में उपयोग में लाना प्रारंभ किया। पहिए के उपयोग ने गति के तरीकों को बदल दिया। यह मनुष्य की रचनात्मकता का ही परिणाम था कि वह अब अपने सामान और बच्चों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने-ले जाने के लिए पहिएदार गाड़ी का प्रयोग करने लगा।

हमारे पुरखों में से न जाने किसने, कभी नुकीले पत्थर से या किसी और चीज से जमीन पर कुछ रेखाएँ खींची और उन खींची हुई रेखाओं में उगने के लिए कुछ बो दिया। कुछ समय बाद उसमें फसल उगी, बस यहीं से व्यक्ति के घुमंतू जीवन का अंत हुआ और उसने एक स्थान पर रहना प्रारंभ कर दिया। कृषि कार्य का स्वरूप ही ऐसा था कि मनुष्य को निरंतर एक ही स्थान पर रहना पड़ता था। यह सब मनुष्य की रचनात्मकता का परिणाम था। घुमंतू जीवन को छोड़कर एक स्थान पर रहने के कारण पूरी मानव जाति का इतिहास बदल गया, उसे अपनी भूमि से लगाव प्रारंभ हुआ। यहीं से मनुष्य की संस्कृति और सभ्यता का विकास प्रारंभ हुआ। यह सब कैसे संभव हुआ? ऐसा नहीं है कि उसे एक दिन स्वप्न आया और वह परिवार जीवन में आ गया, अपितु ऐसा उसकी रचनात्मक सोच और प्रयत्नों के कारण हुआ।

जहाँ तक प्रश्न रचनात्मकता और शिक्षा का है, यह कहा जा सकता है कि रचनात्मकता को शिक्षा से पृथक करना संभव नहीं है। इसी प्रकार शिक्षा को रचनात्मकता से पृथक करना संभव नहीं है। वस्तुतः रचनात्मकता ही शिक्षा है तथा शिक्षा ही रचनात्मकता है। शिक्षा मनुष्य को मनुष्य बनाती है। पशु और मनुष्य में आहार, निद्रा, भय, मैथुन समान होने पर भी अंतर मनुष्य में विकसित प्रज्ञा, जिज्ञासा, मानवीय तथा सांस्कृतिक मूल्यों का है। तभी कहा गया है, 'साहित्य संगीत, कला विहीन, साक्षात पशु पुच्छ विषाड़ हीन'। शिक्षा इन मूल्यों को विकसित करती है और उनका संवर्धन भी करती है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जो मानव जाति द्वारा अभी तक अर्जित ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाती है, इस रूप में शिक्षा ज्ञान की निरंतरता को बनाए रखती है।

जब हम रचनात्मकता और शिक्षा की बात करते हैं तब हमें ध्यान रखना होगा कि शिक्षा से अभिप्राय, केवल जिसे हम आमतौर पर 'औपचारिक शिक्षा' कहते हैं, से नहीं है, अपितु इसमें औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा सम्मिलित हैं। औपचारिक शिक्षा की अवधि मनुष्य के जीवन में बहुत कम समय के लिए है, जबकि अनौपचारिक शिक्षा जीवनपर्यंत है। इसी प्रकार मनुष्य औपचारिक शिक्षा से कम अनौपचारिक शिक्षा से अधिक सीखता है।

विचार कीजिए, औपचारिक शिक्षा की उम्र क्या है? हम कब से औपचारिक शिक्षा का प्रारंभ मानें? ऐतिहासिक दृष्टि से हम औपचारिक शिक्षा को गुरुकुल प्रणाली तक ले जा सकते हैं, अर्थात पाँच-सात हजार वर्ष पूर्व तक, पर मानव

विकास तो हजारों साल पूर्व से लगातार हो रहा है। प्रागैतिहासिक काल में घुमंतू अवस्था से लेकर आज तक विकास का क्रम अनवरत चल रहा है और औपचारिक शिक्षा केवल कुछ हजार वर्ष से प्रारंभ हुई है।

स्वाभाविक है, मानव जाति के विकास में अनौपचारिक शिक्षा की भूमिका औपचारिक शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण रही है। अनौपचारिक शिक्षा में प्रकृति, पर्यावरण, मनुष्य की प्रकृति के रहस्यों को सीखने और समझने की जिज्ञासा प्रमुख रही है।

प्रश्न यह भी है कि क्या औपचारिक शिक्षा रचनात्मक सोच और दृष्टि को विकसित करने में सहायक है? इसका उत्तर 'न' और 'हाँ' दोनों में है। कई विचारक मानते हैं कि औपचारिक शिक्षण संस्थाएँ अपनी उपयोगिता और सामाजिक महत्व को खो चुकी हैं। शिक्षा ने मानव जीवन को अपने विनाश की भयंकर संभावनाओं के मुहाने पर खड़ा कर दिया है। विज्ञान ने हमारे जीवन को जितना सुखद और सुंदर बनाया है, उतना ही उसने हमारे जीवन को समाप्त करने की संभावनाओं को यथार्थ बनाने की भूमिका निभाई है। प्रयोगशालाओं में कार्यरत वैज्ञानिकों ने मानव सभ्यता को पूर्णतः नष्ट करने की विध्वंसक और घातक शक्तियाँ सरकारों के हाथों में दे दी हैं। इस तरह शिक्षा ने रचनात्मकता का ही नहीं, अपितु मानव के विध्वंस को संभव किया है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ऐसे कई विचारक हुए हैं जिन्होंने स्कूल प्रणाली को संदेह के घेरे में ला दिया है। इनमें इवान इलिच (द स्कूलिंग सोसाइटी), एवरेट रैमर (स्कूल इज़ डेड) और पॉल गुडमन (ग्रोइंग अप एब्सर्ड) प्रमुख हैं। यद्यपि ये विचारक स्कूल का कोई विश्वसनीय और स्थायी विकल्प प्रस्तुत नहीं कर सके, पर इन विचारकों ने वर्तमान स्कूल प्रणाली और उसके तौर-तरीकों पर गहरे प्रश्नचिह्न तो लगा ही दिए। यह भी सही है कि ये विचारक अकादमिक सम्मेलनों में नई दृष्टि से शिक्षण संस्थाओं की भूमिकाओं पर विचार करने के लिए वातावरण बनाने में सफल रहे।

एक दूसरा पहलू भी है, विचारक यह मानते हैं कि हम औपचारिक शिक्षा की उपेक्षा नहीं कर सकते। औपचारिक शिक्षा हमें अंधविश्वासों और संकीर्णताओं से मुक्ति दिलाती है, परिणामतः हमारा चिंतन रचनात्मक और सकारात्मक बनता है। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान, अंतरिक्ष आदि के क्षेत्र में होने वाले नए-नए शोध मनुष्य के रचनात्मक चिंतन के परिणाम हैं। विश्व को सुंदर से और अधिक सुंदर बनाने में, प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को समझने में, अज्ञात को ज्ञात करने में औपचारिक शिक्षा की भूमिका है। अंतरिक्ष के क्षेत्र में मानव की उपलब्धियाँ औपचारिक शिक्षा के अभाव में संभव नहीं है। उद्योगों में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी, संचार क्षेत्र में आई क्रांति, जीवन को सुखद बनाने वाले उपकरणों का निर्माण, सभी कुछ औपचारिक शिक्षा से संभव हुआ है। औपचारिक शिक्षा ने रचनात्मक दृष्टि और सोच को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 पर विचार करने की आवश्यकता है। यह नीति रचनात्मकता को बढ़ाने वाली शिक्षा के संबंध में एक सशक्त दस्तावेज भी है और पहल भी है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में उन मूलभूत सिद्धांतों की चर्चा की गई है जो भारत की शिक्षा प्रणाली के लिए मार्गदर्शक का कार्य करेंगे। इन सिद्धांतों में छात्र की रचनात्मक और तार्किक सोच को महत्वपूर्ण माना है। इसी प्रकार इस बात का भी उल्लेख है कि शिक्षा द्वारा प्रत्येक बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की पहचान की जाएगी और उन क्षमताओं के विकास का प्रयास किया जाएगा *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, पृ.सं. 6-7)*।

रचनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए अध्यापन विधि को सरस और रुचिकर बनाया गया है, उसे नीरसता से मुक्त किया गया है। यह शिक्षा नीति पर्याप्त रूप से लचीली, बहुआयामी और बहुस्तरीय है। प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल शिक्षा (ELLE) खेल आधारित, गतिविधि-आधारित और खोज-आधारित है। यह रूटीन शिक्षण विधि से अलग है। इसमें इंडोर गेम, मैदानी खेल, पहेलियाँ और तार्किक सोच, समस्या सुलझाने की कला, चित्रकला, पेंटिंग, कला, शिल्प, नाटक, कठपुतली, संगीत सम्मिलित किया गया है। इसके साथ ही उन तरीकों को भी सम्मिलित किया गया है जिनसे अच्छे गुण और रचनात्मकता का विकास हो, जैसे—सामाजिक कार्य, मानवीय संवेदना, अच्छे व्यवहार, शिष्टाचार, नैतिकता, व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्वच्छता, समूह में कार्य करना तथा परस्पर सहयोग को विकसित करने पर भी जोर दिया गया है। *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, पृ.सं.-9)*

शिक्षण विधि के अलावा भी ऐसे कई प्रकार हैं जिनसे रचनात्मकता को बढ़ावा मिलता है। नाटक, संगीत, बालगीत, संवाद, कहानी, प्रेरक प्रसंग कुछ ऐसी विधियाँ हैं जो रचनात्मकता के विकास में सहायक हैं। इन सभी को शिक्षा का माध्यम, शिक्षण विधि के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 इसका समर्थन करती है।

रचनात्मकता प्रत्येक बालक के अंदर निहित मूल भाव है। शिक्षा का कार्य अंदर की रचनात्मकता को बाहर निकालने की योग्य परिस्थितियों के निर्माण का है। इस दृष्टि से शिक्षा नीति में शिशु शिक्षा से ही ऐसे प्रयत्नों को प्रोत्साहित करने की पहल है जो रचनात्मकता में सहायक हों। इसके लिए बाल केंद्रित शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया है।

'जादुई पिटारा' प्रयोग एक अभिनव प्रयोग है जो शिक्षण विधि का भाग बन चुका है। इसमें उन सब शिक्षण विधियों का समावेश है जिनका उल्लेख किया जा चुका है। नवाचार के द्वारा इसमें शिक्षण को और विधियों एवं सामग्री को जोड़ा जा सकता है। यह रचनात्मक है, छात्र के मनोविज्ञान के अनुकूल है, खेल-खेल में सीखने में सहायक है तथा मनोरंजक है। बाल केंद्रित शिक्षा को किस प्रकार स्कूल की परंपरागत और ढाँचागत व्यवस्था में रचनात्मकता को प्रोत्साहित करने वाली बनाया जा सकता है, 'जादुई पिटारा' उसका एक उदाहरण है। यदि इस प्रयोग में नवाचार किए जाते रहे तो निश्चित रूप से स्कूल को लेकर जो मानसिक स्तर पर एक मानचित्र हमारे मस्तिष्क में बना हुआ है, वह टूट जाएगा और इसके स्थान पर जड़ताओं से मुक्त, गतिशील, आनंददायी विद्यास्थल के रूप में वह अंकित हो जाएगा। औपचारिक शिक्षा में रचनात्मकता का महत्व है, यह व्यक्ति की सोच और व्यवहार को प्रभावित करती है। शिक्षण कार्य से जुड़े सभी घटकों का दायित्व है कि वे रचनात्मकता के विचार को बढ़ाएँ।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)

प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

चरक संहिता और भारतीय परंपरागत चिकित्सा

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि चिकित्सा क्षेत्र में तेजी से हो रहे तकनीकी विकास के बावजूद भारतीय जनमानस में आज भी आयुर्वेद चिकित्सा पद्धतियाँ लोकप्रिय हैं। विभिन्न भारतीय समाजों की लोक परंपरा में ये चिकित्सा पद्धतियाँ गहराई से पैठ बनाए हुए हैं। यह भी सही है कि कोरोना महामारी के बाद से सहजता से उपलब्ध तकनीकी और घर में उपलब्ध सामग्री से हो जाने वाले उपचार के प्रति लोगों की आस्था पहले से कहीं अधिक दृढ़ होती जा रही है। दरअसल आयुर्वेद चिकित्सा को हम ऋषियों द्वारा तैयार की गई ऐसी पद्धति के रूप में लेते हैं, जो प्रकृति के सान्निध्य में रहकर स्वस्थ होने का अवसर उपलब्ध कराती है और इसके लिए जिन

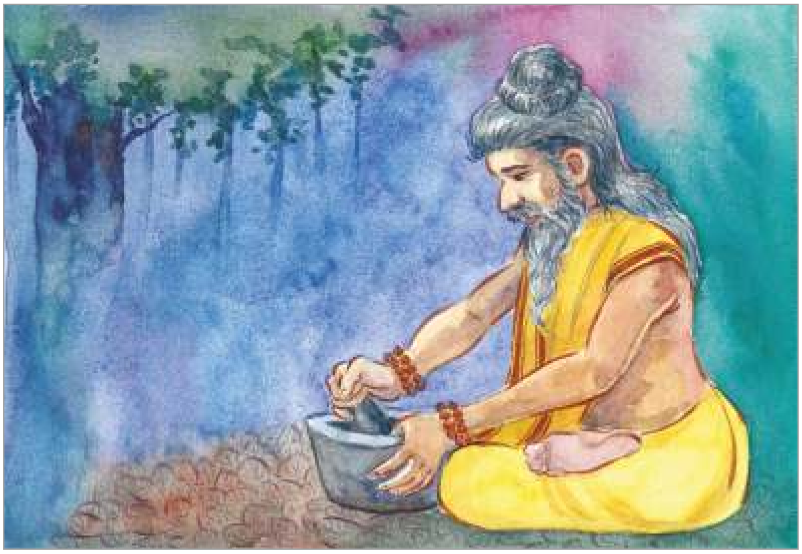

ऋषियों का नाम लिया जाता है, उनमें महर्षि चरक प्रमुख हैं। महर्षि चरक की 'चरक संहिता' पर लगातार हो रहे वैश्विक अनुसंधान से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि यह संहिता भारतीय परंपरागत चिकित्सा से सबसे अधिक निकट की है।

'चरक संहिता' को आयुर्वेद पद्धति का आधार माना जाता है। यह भी कह सकते हैं कि यह संहिता, आयुर्वेद की काया चिकित्सा पद्धति यानी जनरल मेडिसिन का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ है। दरअसल आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को अलग-अलग विशेषताओं के आधार पर आठ शाखाओं में बाँटा जाता है। हालाँकि इन सभी शाखाओं से संबंधित कई ग्रंथ हैं, लेकिन इनमें से सिर्फ दो–'काया चिकित्सा' यानी जनरल मेडिसिन, जिसे 'आंतरिक चिकित्सा' भी कहते हैं और 'शल्य चिकित्सा' यानी सर्जरी का तेजी से विकास हुआ। 'सुश्रुत संहिता' जहाँ शल्य चिकित्सा से संबंधित है, वहीं चरक संहिता आयुर्वेद के औषधि और गैर-शल्य चिकित्सा यानी जनरल मेडिसिन से संबंधित है। ऐसा माना जाता है कि ये ग्रंथ लगभग ई.पू. चौथी और दूसरी शताब्दी के बीच कभी लिखे गए होंगे। कहा जाता है कि मूल ग्रंथ महर्षि अग्निवेश ने लिखा था, जिसे उन्हीं के नाम पर 'अग्निवेश संहिता' के रूप में जाना जाता था। बाद में महर्षि चरक ने इसमें संशोधन व संपादन करके इसे पहले से अधिक ग्राह्य व उपयोगी बना दिया। तभी से इसका नाम 'चरक संहिता' हो गया और फिर यही लोकप्रिय भी हो गया। बहुत बाद में आचार्य दृढ़बल ने इसका एक बार पुनः संपादन किया।

'चरक संहिता' को कुल आठ स्थानों (स्थानम यानी भाग) और 120 अध्यायों में विभाजित किया गया है। पहला स्थान, 'सूत्रस्थानम' है, जिसमें मुख्य रूप से औषधि

डॉ. धनंजय चोपड़ा

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सेंटर ऑफ मीडिया स्टडीज के पाठ्यक्रम समन्वयक हैं। लेखक, पत्रकार व अनुवादक के रूप में 40 वर्षों से भी अधिक का अनुभव। अब तक 15 पुस्तकें व 1000 से अधिक आलेख, फीचर, साक्षात्कार व शोधपत्र प्रकाशित हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार तथा उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के विष्णुराव पराड़कर एवं धर्मवीर भारती पुरस्कार सहित कई पुरस्कार व सम्मान मिल चुके हैं।

संपर्क : मोबाइल– 9415235113

ईमेल– c.dhananjai@gmail.com

विज्ञान, आहार और शारीरिक तथा मानसिक रोगों की बात की गई है। दूसरे, 'निदानस्थानम' में आयुर्वेद पद्धति में रोगों का कारण पता करने की प्रक्रिया एवं उनके उपचार की जानकारी मिलती है। तीसरे, 'विमानस्थानम' में भोजन एवं शरीर के संबंध में जानकारी मिलती है। इसी क्रम में चौथे स्थान यानी चौथा भाग, 'शरीरस्थानम' में मानव शरीर की रचना बनने से लेकर विकसित होने तक को विस्तार से समझाया गया है। पाँचवाँ भाग, 'इंद्रियस्थानम' रोगों की प्रकृति एवं उनके उपचार पर केंद्रित है। छठे भाग, 'चिकित्सास्थानम' में महत्वपूर्ण रोगों, उनकी पहचान करने की विधि तथा उनके उपचार की महत्वपूर्ण विधियाँ वर्णित हैं। सातवें भाग को 'कल्पस्थानम' कहते हैं, जिनमें साधारण बीमारियों के बारे में बताया गया है। अंतिम, 'सिद्धिस्थानम' में रोग के निदान की सफलता के गुर बताए गए हैं। कहते हैं कि इतना विस्तार में रचित यह प्राचीनतम चिकित्सा ग्रंथ है, जो अपने आप में किसी विश्वविद्यालय से कम नहीं है। यही वजह है कि मूल रूप से संस्कृत में लिखी गई 'चरक संहिता' का अनुवाद अनेक विदेशी भाषाओं में हुआ है।

"आधुनिक चिकित्सा शास्त्र इन दिनों जिन वस्तुओं को अपने भोजन में शामिल करने की बात कर रहा है, चरक उसकी बात सैकड़ों वर्ष पहले ही कर रहे थे। दरअसल चरक भारतीय परंपरागत चिकित्सा के उस सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुए मिलते हैं, जो सभी रोगों के मूल में, भोजन और उसके पाचन से जुड़ी गतिविधियों को ही मानता है। चरक शरीर की उपापचय यानी मेटाबोलिज्म की प्रक्रियाओं को सबसे प्रमुख स्थान देते हैं। महर्षि चरक का मानना है कि यदि हम शरीर की उपापचय से जुड़ी प्रक्रियाओं पर नियंत्रण पा लें तो कई रोगों से छुटकारा पा सकते हैं।"

'चरक संहिता' का अध्ययन करने वाले विद्वान मानते हैं कि महर्षि चरक मानव शरीर के संबंध में लगभग वही जानकारी रखते थे, जिसे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में बहुत बाद में शामिल किया गया। जीव शरीर में हृदय का मुख्य अंग के रूप में होना और उसका स्वस्थ रहना आवश्यक है, यह बात चरक संहिता में प्रमुख रूप से वर्णित है। आयुर्वेद विशेषज्ञों का यह मानना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि महर्षि चरक ऐसे पहले चिकित्सक थे, जिन्होंने उपापचय यानी मेटाबोलिज्म, पाचन और शरीर प्रतिरक्षा यानी इम्युनिटी के बारे में बहुत पहले ही बताया था। यही नहीं 'चरक संहिता' में शरीर विज्ञान, निदान शास्त्र और भ्रूण विज्ञान के विषय में जानकारी मिलती है। महर्षि चरक को आनुवंशिकी के मूल सिद्धांतों का भी ज्ञान होना, आधुनिक शोधकर्ताओं को आश्चर्य में डाल देता है। चरक संहिता में उन वैज्ञानिक कारणों का विवरण मिलता है, जिससे बच्चे का लिंग निर्धारण होता है। उन्हें शरीर में रक्त संचार क्रिया और संक्रमण से होने वाली बीमारियों व महामारियों का भी ज्ञान था। 'चरक संहिता' केवल चिकित्सा का ज्ञान ही नहीं दे रही थी, बल्कि अपने समय के लोगों के लिए किसी मेडिकल डायरेक्टरी की तरह भी थी। इसमें तत्कालीन प्रशिक्षित चिकित्सकों और चिकित्सालयों का भी विवरण मिलता है।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र इन दिनों जिन वस्तुओं को अपने भोजन में शामिल करने की बात कर रहा है, चरक उसकी बात सैकड़ों बरस पहले ही कर रहे थे। दरअसल चरक भारतीय परंपरागत चिकित्सा के उस सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुए मिलते हैं, जो सभी रोगों के मूल में भोजन और उसके पाचन से जुड़ी गतिविधियों को ही

मानता है। चरक शरीर की उपापचय यानी मेटाबोलिज्म की प्रक्रियाओं को सबसे प्रमुख स्थान देते हैं। महर्षि चरक का मानना है कि यदि हम शरीर की उपापचय से जुड़ी प्रक्रियाओं पर नियंत्रण पा लें तो कई रोगों से छुटकारा पा सकते हैं। दूसरे शब्दों में यदि पित्त, कफ और वायु से जुड़े दोषों को सुधार लें तो शरीर संतुलन स्थापित करने में मदद मिलती है। महर्षि चरक इसे कुछ इस तरह समझाते हैं कि 'जो भोजन खाया जाता है, वह पहले एक रस में परिवर्तित होता है, तत्पश्चात रक्त, मांस तथा अन्य धातुओं में। पाचन-प्रक्रिया के दौरान एक हल्की प्रतिक्रिया होती है, जिससे एक झागदार पदार्थ 'कफ'

बनता है। कुछ समय पश्चात जब भोजन अधपचा होता है, तब एक खट्‌टी प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है। इस प्रतिक्रिया द्वारा आँतों में भोजन से एक तरल पदार्थ, 'पित्त' बनता है। आँतों में थोड़ा और नीचे, पचा हुआ भोजन एक सूखे अम्बार में बदल जाता है और इस प्रक्रिया में एक कटु एवं कठोर प्रतिक्रिया आरंभ होती है, जिसमें वात (वायु) उत्पन्न होती है। इस प्रकार उपर्युक्त तीन दोष उत्पन्न होते हैं।' यह कहना गलत न होगा कि 'फादर ऑफ मेडिसिन' कहे जाने वाले महर्षि चरक ने पहली बार चिकित्सीय परीक्षण की वस्तुनिष्ठ विधियों का उल्लेख किया था।

आहार को लेकर चरक संहिता में बहुत विस्तार से बताया गया है। महर्षि चरक ने आहार को न केवल रोगों के कारण से जोड़ा है, बल्कि रोगों के बचाव और उपचार से भी जोड़ा है। आज जिन फूल, पत्तियों, फलों और पेड़ की छालों को लेकर आधुनिक प्रयोगशालाओं में शोध हो रहा है, उनके संबंध में चरक संहिता में बड़ी ही सहजता से बताया गया है। यहाँ यह बताना भी जरूरी है कि देश-विदेश के कई विश्वविद्यालयों के खाद्य प्रौद्योगिकी और जैव प्रौद्योगिकी विभागों में चरक संहिता को आधार बनाकर आहार और रोगों के रिश्तों की पड़ताल की जा रही है, ताकि लोगों को स्वस्थ रखने का माध्यम उनके आहार को ही बनाने का पुख्ता प्रयास हो सके। यह भी अनायास नहीं है कि काशी हिंदू विश्वविद्यालय स्थित भारतीय चिकित्सा संस्थान का आधुनिक चिकित्सा संकाय, आयुर्वेद संकाय के साथ मिलकर पहले चरक संहिता के हृदय महाकषाय पर शोध करने जा रहा है। काशी के वरिष्ठ वैद्यों की मानें तो ईसा पूर्व दूसरी सदी में लिखित चरक संहिता में हृदय रोग समेत अनेक गंभीर बीमारियों के लिए महाकषाय का वर्णन है। इन महाकषाय के कुल 50 समूह हैं। इनमें हृदय महाकषाय, श्वासहर महाकषाय, कासहर महाकषाय, जीवनीय महाकषाय आदि सम्मिलित हैं। प्रत्येक समूह में 10-10 पौधों को सम्मिलित किया गया है। सभी महाकषाय समूह अलग-अलग बीमारियों के लिए निर्धारित हैं। इस तरह सभी समूहों को मिलाकर कुल 500 पौधों को औषधि के रूप में शामिल किया गया है। महर्षि चरक ने लिखा भी है कि कोई भी शोधकर्ता इन 500 औषधीय पौधों से हजारों बीमारियों के उपचार के लिए असंख्य औषधियों का निर्माण कर सकता है। यह हो भी रहा है।

हाल ही में स्वास्थ्य शिक्षा ढाँचे में नए बदलाव के अनुसार एन.एम.सी. यानी राष्ट्रीय चिकित्सा आयोग ने मेडिकल छात्रों की ओर से ली जाने वाली 'हिप्पोक्रेटिक शपथ' को 'महर्षि चरक शपथ' से बदलने की सिफारिश की है। यहाँ यह जानना जरूरी है कि हिप्पोक्रेटिक शपथ, प्राचीन यूनानी चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स से प्रेरित है। दरअसल महर्षि चरक अपनी संहिता में केवल रोगों, उनके कारणों और बचाव की विधियों व औषधियों की बात ही नहीं करते, अपितु वे चिकित्सकों के आचार-व्यवहार की भी बात करते हैं। यह सही है कि उनमें से कई बातें आज के समय में अमल में लाना कठिन ही नहीं असंभव-सा है, लेकिन कुछ बातें चिकित्सा जगत में आए दुरूह बदलावों का संतोषजनक हल जरूर प्रदान करती हैं। वास्तव में भारतीय परंपराओं में भगवान कहे जाने वाले एक चिकित्सक से जिन सार्वजनिक उत्तरदायित्वों की अपेक्षा की गई है, वे महर्षि चरक बहुत सहजता से अपनाने की बात करते हैं।

बहरहाल यह तो तय है कि पूरी दुनिया ने अब आयुर्वेद से जुड़ी संहिताओं, विशेषकर चरक और सुश्रुत संहिताओं को समझने और उनको आधार मानकर प्रयोगशालाओं में कई तरह के प्रयोग प्रारंभ कर दिए हैं। कोरोना महामारी के बाद से इसमें तेजी भी आई है। बड़ा बदलाव तो चिकित्सा की उन पद्धतियों से जुड़े उन शोधार्थियों और अध्ययनकर्ताओं में देखने को मिल रहा है, जो आयुर्वेद से इतर अपना अस्तित्व बनाकर अब तक कार्य करती आई हैं। यह कहने में कतई गुरेज नहीं है कि आने वाले दिनों में इन संहिताओं के सरल व सहज रूप भी हमारे सामने होंगे, ताकि सामान्यजन इन्हें सहजता से समझकर स्वस्थ जीवन की ओर स्वयं को और स्वयं के साथियों को ले जा सकें।

भारतीय गणित और नक्षत्र-विज्ञान के अग्रणी नायक

19 अप्रैल, 1975 को भारत के प्रथम मानव-निर्मित उपग्रह 'आर्यभट' को सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में स्थापित किया गया और इसके साथ ही भारत अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संपन्न चुनिंदा देशों में शामिल हो गया, जो अब तक चंद विकसित देशों की बपौती बना हुआ था। वैश्विक अंतरिक्ष क्लब में यह गौरवमयी उपस्थिति स्वतंत्र भारत की प्रथम पीढ़ी के 'विजनरी' नेतृत्व की वैज्ञानिक मनोवृत्ति और अनुसंधान को केंद्रीय महत्व देने की नीति की पुष्टि और प्रतिष्ठा भी थी। इन नेताओं ने आधुनिक भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान के पितामह विक्रम साराभाई (जिनका इस महान उपलब्धि से कुछ वर्ष पहले ही निधन हो गया था) सहित असाधारण प्रतिभा वाले स्वप्नदर्शी वैज्ञानिकों को पूरी स्वायत्तता के साथ काम करने का अवसर और वातावरण दिया। अपने-अपने क्षेत्रों में होमी जहाँगीर भाभा, मेघनाथ साहा, प्रशांत कुमार महालनोबिस, शांति स्वरूप भटनागर जैसी इन विश्व भर में सम्मानित प्रतिभाओं ने गरीबी, अशिक्षा, जड़ परंपराओं से जूझते नव-स्वतंत्र देश को चौथाई सदी में ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी में विश्व के अग्रणी देशों में शामिल करा दिया।

हमारे प्रथम मानव-निर्मित उपग्रह का नाम 'आर्यभट' (आर्यभट्ट नहीं, जैसा कि अज्ञानवश और कभी-कभी अवचेतन में बसे जाति-दंभ में मान लिया जाता है) रखने के भी कुछ जाने-अनजाने निहितार्थ हैं। आर्यभट मूलतः गणित-ज्योतिष (एस्ट्रोनॉमी) के सिद्धांतकार थे, करोड़ों किलोमीटर दूर स्थित सूरज-चाँद, ग्रहों और काल्पनिक अंतरिक्ष पिंडों के मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव की अटकलों और उनके आराधना निवारण के उपायों वाले फलित ज्योतिषी (एस्ट्रोलोजर) नहीं थे। 'आर्यभट' के नाम वाला हमारा प्रथम मानव-निर्मित उपग्रह वस्तुपरक (ऑब्जेक्टिव), विवेकशील, वैज्ञानिक प्रवृत्ति और पद्धति पर आधारित ज्ञान-विज्ञान की राह चुने जाने का प्रतीक भी है।

किसी भी प्रतिभा का आकलन उसके देश-काल में किया जाना सबसे अच्छा मानक है। आर्यभट के साथ अच्छी बात यह है कि उन्होंने स्वयं अपने काल और कर्मक्षेत्र का उल्लेख किया है और गुजरे जमाने के हर व्यक्ति व घटना को 'अत्यंत प्राचीन' बनाने की अटकलों को समाप्त कर दिया है। अपनी एकमात्र उपलब्ध पुस्तक 'आर्यभटीय' में उन्होंने अपने जन्म के समय को कलियुग के (प्रारंभ होने से) 60 वर्षों की 60 अवधियाँ (यानी 3600 वर्ष) पूरी होने से 23 वर्ष पूर्व बताया है। गणना की जाए तो यह 476 ई. (398 शक अथवा 534 विक्रम संवत) निकलता है। दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने 'कलियुग-प्रारंभ' के आधार पर यह गणना की है, वर्तमान में अधिक प्रचलित शक अथवा विक्रम संवत के आधार पर नहीं। उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र 'कुसुमपुर' यानी आज के 'पटना' को बताया। यह गुप्त वंश का अंतिम दौर था जिनका शासन केंद्र भी प्रयाग और पटना के इलाके में ही रहा।

राजेंद्र भट्ट

राजेंद्र भट्ट तीन दशकों से अधिक समय तक प्रिंट और समाचार प्रसारण क्षेत्रों में संपादन से जुड़े हैं। वे साहित्यिक और सामाजिक विषयों पर लिखते रहे हैं।

संपर्क : मोबाइल– 9868778752

ईमेल– rbhatt20@gmail.com

'आर्यभटीय' के प्रथम भाष्यकार (सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के) भास्कर प्रथम के अनुसार, आर्यभट का जन्म 'अश्मक प्रदेश' यानी आज के गोदावरी तट के करीब 'पैठण' के इलाके में हुआ।

माना जाता है कि आर्यभट ने दो ग्रंथ लिखे—'आर्यभटीय' और 'आर्यभट-सिद्धांत'। इसमें दूसरा ग्रंथ तो अभी तक अप्राप्य है। माना जाता है कि 'आर्यभटीय' का 800 ई. के आस-पास अरबी अनुवाद भी हुआ जो अब अप्राप्य है। आर्यभट के जीवनकाल के बाद की कुछ शताब्दियों तक उनका सम्मान बना रहा और उनके सिद्धांतों के आधार पर ग्रंथ भी रचे गए। लेकिन धीरे-धीरे उनकी परंपरा विरल होती गई। मध्य एशिया के प्रख्यात विद्वान अल-बरूनी (973-1048 ई.) ने भी आर्यभट के बारे में लिखा है, लेकिन बताया है कि उन्हें आर्यभट की किताब नहीं मिली। 19वीं सदी तक के भारतीय-यूरोपीय विद्वानों-गणितज्ञों ने आर्यभट के सिद्धांतों का उल्लेख तो किया, लेकिन सभी ने यही बताया कि 'आर्यभटीय' की कोई प्रति उपलब्ध नहीं है।

'आर्यभटीय' की प्रामाणिक प्रति को दुनिया के सामने लाने का श्रेय है प्रख्यात विद्वान, शिक्षाविद और चिकित्सक महाराष्ट्र के रामचन्द्र विट्ठल लाड को, जिनका अधिक प्रचलित नाम है, डॉ. भाऊ दाजी लाड (1824-1874 ई.)। 1863 ई. में उन्होंने केरल से मलयालम लिपि में लिखी 'आर्यभटीय' की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ खोज निकालीं। 1865 ई. में उन्होंने लंदन की प्रतिष्ठित रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में इस बारे में विद्वतापूर्ण लेख प्रकाशित कराया और विश्वभर के विद्वानों का आर्यभट से प्रामाणिक परिचय कराया। अब यूरोप के विद्वानों की इधर नजर पड़ी और 1874 ई. में डच भाषाविद और प्राच्य-विद्या विशेषज्ञ जोहान हेंड्रिक केस्पर केर्ण ने लाइडेन (हॉलैंड) से पहली बार 'आर्यभटीय' की (15वीं शताब्दी की परमेश्वर-टीका सहित) प्रतियाँ छपवाईं। इसी प्रति के आधार पर मुजफ्फरपुर (बिहार) के उदयनारायण सिंह ने 1906 में हिंदी अनुवाद सहित प्रथम भारतीय संस्करण प्रकाशित कराया। इस तरह, आर्यभट के मामले में भी अंग्रेजी भाषा पढ़े और विदेशी वैज्ञानिकों ने एक बार फिर हमें अपनी ज्ञान-परंपरा से परिचित कराया जिस पर हम अकसर (अब भी, कई बार बिना पढ़े) गर्व करते हैं।

अब संक्षिप्त परिचय 'आर्यभटीय' का। इस ग्रंथ में कुल 121 श्लोक हैं—मतलब मूल रूप में 12-15 पेज की पुस्तिका। अर्थात संस्कृत 'ग्रंथ' शब्द सुनते ही हमारे मन में जो लाल कपड़ों में बँधी, पूजा की जाने वाली मोटी पोथी की छवि आती है, उसे भूलना पड़ेगा। इसकी चार पाद (अध्याय) हैं—गीतिकापाद (या दसगीतिकासूत्र), गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद। 'गीतिकापाद' (13 श्लोक) में ब्रह्मा-वंदना, आगे के अध्यायों के विषय-परिचय, आर्यभट की अक्षरांक-पद्धति के नियम, आकाशीय पिंडों के भ्रमण, कल्प, युग के परिमाण जैसे विषय हैं। 'गणितपाद' में 33 श्लोकों में परिधि और व्यास के अनुपात (पाइ) और अन्य गणितीय विवेचन हैं। तीसरे 'कालक्रियापाद' के 24 श्लोकों में काल गणना से जुड़ी जानकारी है। चौथे 'गोलपाद' में 50 श्लोकों में पृथ्वी, सूर्य और ग्रहों की गतियों का विवरण है।

जाहिर है, यह पुस्तक बेहद संक्षिप्त, सूत्र-शैली में लिखी गई है जिसमें विषय को कम-से-कम शब्दों में कहे जाने का प्रयास है। ऊपर से गणित जैसा सार-गुंफित विषय है, जिसके बुनियादी सिद्धांतों की जानकारी के बिना इसे समझना बेहद कठिन है। अतः आर्यभट के महत्व को विभिन्न क्षेत्रों में उनके इन मौलिक निष्कर्षों से समझना उचित होगा जिनका आधुनिक विज्ञान और प्रगतिशील वैज्ञानिक सोच को आगे बढ़ाने में ठोस योगदान रहा।

आर्यभट भारत के पहले वैज्ञानिक-गणितज्ञ हैं, जिन्होंने स्पष्ट किया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है और सूर्य तथा तारामंडल स्थिर हैं। हमारी सारी पौराणिक मान्यताएँ और कथाएँ धरती को स्थिर मानने पर आधारित हैं कि धरती अचला है। (जैसे धरती शेषनाग, कछुए की पीठ पर टिकी है।) याद कीजिए कि

पश्चिम में भी मध्य काल में गैलीलियो (1564-1642) और ब्रूनो (1548-1600) को भी चर्च की स्थिर पृथ्वी की धारणाओं का विरोध करने पर कष्ट झेलने पड़े और ब्रूनो को तो जान भी गँवानी पड़ी। जोहानेस कैप्लर (1531-1630) और निकोलस कॉपरनिकस (1473-1543) ने हजार साल बाद यूरोप को जो सत्य बताया, आर्यभट एक हजार साल पहले अपनी गणनाओं से उस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे। यह और बात है कि हमारे देश-समाज ने भी, आर्यभट के काल और उनकी बाद की शताब्दियों में भी, उनकी इस महान उपलब्धि को न समझा, न अपनाया। पश्चिम में मान्य होने के बाद ही हमने इस उपलब्धि को स्वीकारा और इस पर गर्व करना शुरू किया।

आर्यभट ने सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण के विवेकसम्मत वैज्ञानिक कारण (चंद्रमा के पृथ्वी और सूर्य के बीच आ जाने से सूर्यग्रहण और पृथ्वी के सूर्य और चंद्रमा के बीच आ जाने से चंद्रग्रहण होना) प्रस्तुत किए। उन्होंने कथित राहु-केतु द्वारा सूर्य-चंद्रमा को 'ग्रस' लेने की पौराणिक कथा को स्वीकार नहीं किया।

यों तो आर्यभट से तीन शताब्दी पहले ही भारत में शून्य और दाशमिक स्थानमान पद्धति की धारणा आ चुकी थी, लेकिन आर्यभट ने (संख्यात्मक नहीं) श्लोकों में पुस्तक लिखे जाने के बावजूद दाशमिक स्थानमान पर आधारित पद्धति को प्रस्तुत किया है। उन्होंने अक्षरांक पद्धति से सूत्र शैली में अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। विज्ञान और गणित की प्रगति में शून्य और दशमलव पर आधारित दशमांक पद्धति का क्रांतिकारी योगदान है। रोमन अंकों की जटिलता से इस बात को समझा जा सकता है। अपने देश में भी पहले नाप-तोल (छटांक-सेर-मन, आउंस-पौंड और इंच-गज आदि) की गैर-दाशमिक प्रणालियाँ थीं। 1957 में देश ने नाप-तौल में दशमांक आधार वाली प्रगतिशील और आसान मीट्रिक पद्धति (सेंटीमीटर-मीटर-किलोमीटर, ग्राम-किलोग्राम वाली) अपनाई। यहाँ तक कि 16 आने और 64 पैसे के रुपये की बजाय 100 पैसे के रुपये वाली मौद्रिक पद्धति भी अपनाई। यह एक प्रगतिशील, क्रांतिकारी कदम था, जड़ता तोड़ने वाली सोच थी। डेढ़ हजार साल पहले आर्यभट का भी ऐसा ही प्रगतिशील, क्रांतिकारी विजन था।

आर्यभट वृत्त के परिधि-व्यास अनुपात (पाई) के दशमलव के चार अंकों तक सही (3.1416) गणना कर चुके थे और इसे भी उन्होंने 'आसन्न' (सन्निकट) माना था। वह जानते थे कि इस अनुपात का पूर्ण शुद्ध संख्यात्मक मान नहीं निकल सकता।

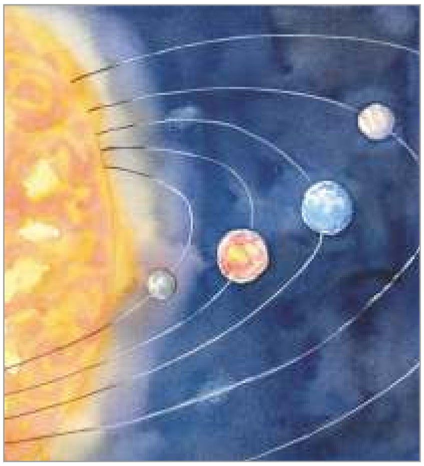

आधुनिक त्रिकोणमिति (ट्रिग्नोमेट्री) में ज्या (sine) की धारणा महत्वपूर्ण है। आर्यभट ने ज्या-अंतरों के जो मान दिए हैं, वे आधुनिक मानों के बहुत करीब हैं। त्रिकोणमिति में आर्यभट की धारणाओं का बड़ा महत्व है।

इनके अलावा, प्राचीन भारत की आस्तिक स्मृति-परंपरा पाँच महाभूतों (मिट्टी, जल, वायु, अग्नि और आकाश) को मानती है। आर्यभट केवल चार महाभूतों से सृष्टि की निर्मिति को मानते हैं। आकाश को वह महाभूत नहीं मानते। परंपरा के विपरीत, आर्यभट चार युगों को बराबर अवधि का मानते थे। सृष्टि-प्रलय के पौराणिक आख्यान में भी उनकी आस्था नहीं थी। वह काल को अनादि-अनंत मानते थे, टुकड़ों में बँटा हुआ नहीं।

लेकिन विडंबना है कि इतने प्रतिभाशाली और अपने समय से आगे चलने वाले आर्यभट कुछ ही सदियों के बाद परंपरा से भुला दिए गए, यहाँ तक कि उनकी एक पुस्तक शुरू से ही अप्राप्य हो गई और दूसरी भी डॉ. भाऊ दाजी लाड के प्रयासों से दुबारा प्रकाशित हो सकी। उसकी भी नागरी लिपि में प्रतियाँ नहीं रहीं, सुदूर केरल में उनकी मलयालम लिपि की प्रतियाँ बनाई गईं। दिलचस्प बात यह है कि मूल पुस्तक न होने पर भी उनकी पुस्तक पर टीकाएँ बदस्तूर होती रहीं। विडंबना यह भी है कि उनके जीवनकाल के करीब सौ साल बाद, 629 ई. में पहले प्रमुख टीकाकार भास्कर प्रथम ने स्तुति-शैली में आर्यभट की खूब तारीफ की, लेकिन उनके 'भू-भ्रमण' (पृथ्वी के घूमने) की क्रांतिकारी मान्यता में ही तोड़-मरोड़ कर उसे 'भ्रं-भ्रमण' लिख दिया, यानी तारा-मंडलों के भ्रमण और धरती के स्थिर होने की पंडितों वाली पौराणिक मान्यता में बदल दिया। दूसरी तरफ, इसी समय आर्यभट के प्रमुख आलोचक ब्रह्मगुप्त को भी अपने 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' (629 ई.) में सबसे ज्यादा नाराजगी यही रही कि आर्यभट के विचार लोक-विश्वास और वेदों, स्मृतियों और संहिताओं के विरुद्ध हैं। ब्रह्मगुप्त के अनुसार, आर्यभट के दोषों की संख्या बताना संभव नहीं है। मतलब, आर्यभट के निष्कर्षों पर, चाहे तथ्यों की तोड़-मरोड़ के साथ प्रशंसा हो या सीधी निंदा हो, एक जैसे प्रहार हुए। दूसरी ओर, ज्योतिष, कुंडली और ग्रहों के मानव-जीवन पर भाँति-भाँति के प्रभाव बाँचने वाली परंपरा के आचार्य वराहमिहिर (छठी शताब्दी) के ग्रंथ निरंतर लोकप्रिय बने रहे। यहाँ तक कि कुछ परंपरा-पूजकों ने उनके महिमा-मंडन के लिए उन्हें 500 साल पहले पैदा हुए विक्रमी संवत वाले विक्रमादित्य का एक नवरत्न भी घोषित कर दिया। आखिर उनके ग्रंथों से एक बड़े वर्ग की आजीविका भी तो फल-फूल रही थी। इस तरह, आर्यभट को भी, गैलीलियो की तरह परंपरागत विचारों के विरोध की नाराजगी और दबाव झेलने पड़े। यह भी उल्लेखनीय है कि आर्यभट किसी राजा के आश्रित या चाटुकार नहीं रहे।

निश्चय ही, भारत में विज्ञान और विवेक की ज्योति जलाने वालों में आर्यभट सबसे अगली पंक्ति के नक्षत्र वैज्ञानिक-गणितज्ञ थे। उन्होंने विज्ञानसम्मत गणित की जो राह चुनी, वही राह विश्वभर में प्रगतिकामी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान ने भी चुनी और नई बुलंदियाँ छूने में मानव-जाति की मदद की।

एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि आर्यभट या ऐसे किसी भी महामानव का आकलन करने में हमें उनके देश-काल की और उस समय के ज्ञान-विज्ञान-प्रौद्योगिकी की सीमाओं को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। निश्चय ही कई क्षेत्रों में उनके निष्कर्ष इन सीमाओं से प्रभावित होंगे और आज उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से पुराने और गलत हो गए होंगे। हमें न तो इन कमियों को छिपाना और तोड़-मरोड़ कर सही साबित करना चाहिए, न ही ऐसी प्रतिभाओं के महत्व और योगदान को कमतर करना चाहिए, यही वैज्ञानिक-विवेकपूर्ण दृष्टि है।

भारतीय परंपरा में पर्यावरण विज्ञान

लगभग छह दशक पूर्व तक विश्व के देशों में पर्यावरण पर कोई विचार नहीं किया गया, जबकि हमारे धर्मग्रंथों में स्वच्छ और शुद्ध वातावरण को अपनी चेतना का मुख्य विषय बनाया गया था। हमारे ऋषि-मुनियों ने जनता को धर्म से जोड़ने तथा उसकी उपयोगिता को समझने-समझाने के लिए अपने-अपने धर्मग्रंथों में अनेक ऋचाओं और मंत्रों को जोड़ा था।

ज्ञान के आदि स्रोत

वेदों में पर्यावरण को स्वच्छ और शुद्ध बनाए रखने के लिए बड़ा सटीक और वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। यजुर्वेद में वायुमंडल को शुद्ध करने की दृष्टि से यज्ञ विधान के लिए अनेक मंत्रों की रचना की गई थी।

डॉ. मुरारी लाल अग्रवाल

जन्म : 05 जनवरी, 1949, आगरा, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी. (लब्ध स्वर्ण पदक)

प्रकाशन : आठ मौलिक पुस्तकें सृजित, 32 विश्वविद्यालयीय पुस्तकों का संपादन। 30 से अधिक शोधपत्र। ज्वलंत पर्यावरण विषय पर लेखनी गतिशील।

पुरस्कार : 'महामहोपाध्याय' मानद उपाधि, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज, राष्ट्र रत्न सम्मान, सौहार्द (संस्कृत) सम्मान

संपर्क : मोबाइल– 9412458565

ईमेल– mlagrawal.1949@gmail.com

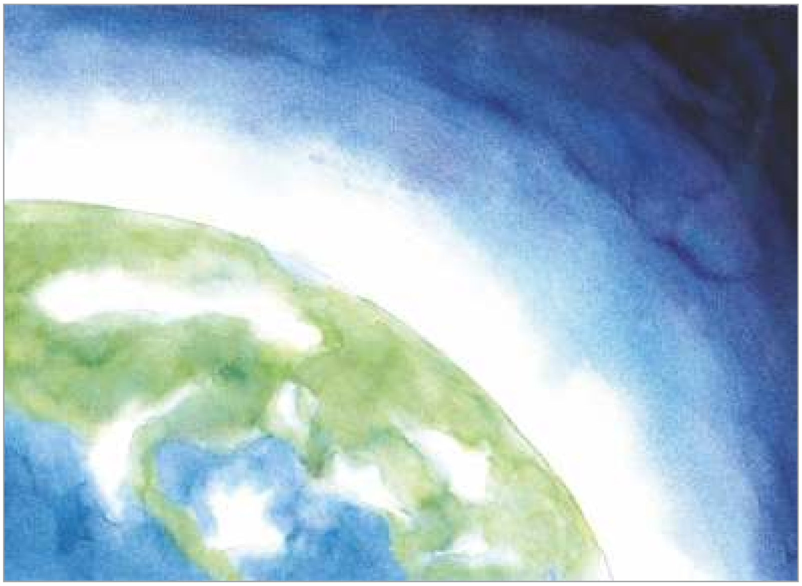

सृष्टि की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? यह प्रश्न आज हमारे वैज्ञानिकों के सामने बार-बार आया है। यह ब्रह्मांड किसने बनाया? यह पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि कहाँ से आए? इसका उत्तर क्या हो? हम कह सकते हैं कि जो भी इसका उत्पत्तिकर्ता है, वह शरीरधारी तो कदापि नहीं हो सकता। वह अवश्य ही कोई ऐसी शक्ति है जो सृष्टि को बना भी सकती है और बिगाड़ भी सकती है। परंतु वैज्ञानिकों ने कहा है कि यह सृष्टि सदैव से ऐसी ही थी और सदैव ऐसी ही रहेगी। सृष्टि है तो वातावरण है, वातावरण है तो पर्यावरण है और पर्यावरण है तो स्वस्थ प्रकृति है और निश्चय ही उस प्रकृति के अनेक रूप भी हैं। जहाँ ऐसी प्रकृति का प्रभाव हो वहाँ पर्यावरण के तीन रूप—**सत्व, रज** और **तम** विद्यमान हैं। इसी से परमात्मा ने ब्रह्मांड की सृष्टि की है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय विज्ञान तथा तकनीक को जानने के लिए प्राचीन साहित्य और पुरातत्व का सहारा लेना पड़ता है। प्राचीन भारतीय साहित्य अत्यंत विपुल एवं विविधता से परिपूर्ण है। इसमें धर्म, दर्शन, भाषा, शिक्षा आदि के अतिरिक्त गणित, ज्योतिष, सैन्य विज्ञान, आयुर्वेद, रसायन विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान आदि भी वर्ण्य विषय रहे हैं।

'धर्म' शब्द संस्कृत भाषा के 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है किसी वस्तु को धारण करना अथवा उस वस्तु के अस्तित्व को बनाए रखना। धर्म का सामान्य अर्थ कर्तव्य है। इसीलिए व्यक्ति के जीवन से संबंधित अनेक आचरणों की एक संहिता है जो उसके कर्तव्य और व्यवहारों को नियंत्रित तथा निर्देशित करती है एवं पर्यावरण को संरक्षित करती है।

पूर्व में मनुष्य के मस्तिष्क में इस प्रकार के स्वाभाविक प्रश्न पैदा होते थे कि प्राकृतिक घटनाओं का संचालन कौन करता है? पानी क्यों गिरता है? बिजली क्यों कौंधती है? आदि इसी प्रकार के अनेक प्रश्न उसके मस्तिष्क में पैदा होते थे। इसके साथ ही वह ऐसे प्रयास भी करता था जो प्राकृतिक शक्तियों से उसकी रक्षा कर सकें। ये प्राकृतिक शक्तियाँ ही पर्यावरण के मूल में हैं।

“ शिक्षा एक सविचार प्रक्रिया है जिसका कार्य दार्शनिक मान्यताओं के अनुरूप समाज तथा व्यक्ति का निर्माण करना है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली सविचार तथा अविच्छिन्न प्रक्रिया है, जो जीवन के दार्शनिक पक्ष को उजागर करती है, मनुष्य को समाज में रहने योग्य बनाती है तथा पर्यावरण के प्रति जागरूक करती है। यह संस्कृति का संरक्षण ही नहीं करती, बल्कि आगामी पीढ़ी की संस्कृति, परंपराओं तथा ज्ञान की अज्ञात सोच का भी हस्तांतरण करती है। ”

‘दर्शन’ अंग्रेजी भाषा के ‘फिलोसोफी’ शब्द का रूपांतर है। इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक के दो शब्दों ‘फिलोस’ तथा ‘सोफिया’ से हुई है। ‘फिलोस’ का अर्थ है—प्रेम अथवा अनुराग और ‘सोफिया’ का अर्थ है ‘ज्ञान’। इस प्रकार दर्शन का शाब्दिक अर्थ ‘ज्ञान-अनुराग’ अथवा ‘ज्ञान का प्रेम’ है। दर्शन की परिभाषा देते हुए ‘सेलर्स’ ने कहा है कि फिलोसोफी विषय विज्ञानों का संकलन है, जैसे—ज्ञान मीमांसा, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र तथा साथ ही एक समुचित सर्वेक्षण भी है।

शिक्षा एक सविचार प्रक्रिया है जिसका कार्य दार्शनिक मान्यताओं के अनुरूप समाज तथा व्यक्ति का निर्माण करना है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली सविचार

तथा अविच्छिन्न प्रक्रिया है, जो जीवन के दार्शनिक पक्ष को उजागर करती है, मनुष्य को समाज में रहने योग्य बनाती है तथा पर्यावरण के प्रति जागरूक करती है। यह संस्कृति का संरक्षण ही नहीं करती, बल्कि आगामी पीढ़ी की संस्कृति, परंपराओं तथा ज्ञान की अज्ञात सोच का भी हस्तांतरण करती है।

भाषा मानव जीवन की प्राचीनतम उपलब्धि है। भाषा का अध्ययन भारत में चिरकाल से होता आ रहा है। वेदों में भी भाषा के संबंध में अनेकशः विचार किया गया है, लेकिन भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन आधुनिक युग की देन है। भाषा विज्ञान के संबंध में पाश्चात्य देशों में भारत की अपेक्षा अधिक कार्य हुआ है। भाषा विज्ञान के अंतर्गत वाक्य एवं पद विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, अर्थ विज्ञान तथा लिपि विज्ञान आदि का विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

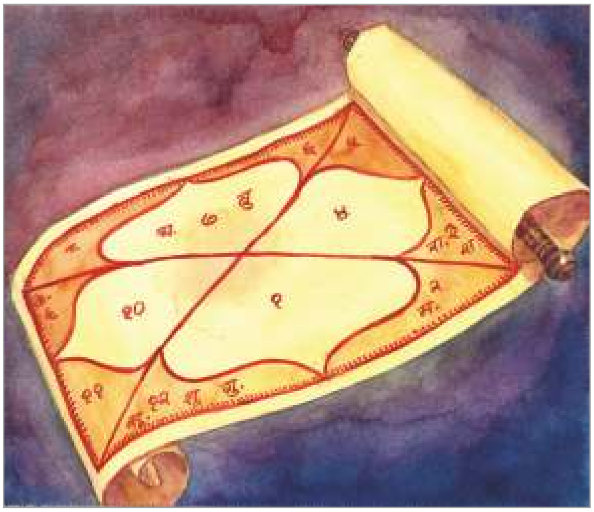

ज्योतिष शास्त्र का अस्तित्व हम वेदों और वैदिक साहित्य में सर्वत्र पाते हैं। वेदों में सूर्य, चंद्रमा और दूसरे कतिपय नक्षत्रों के लिए देवत्व रूप में स्तुतिपरक ऋचाएँ गाई गई हैं। इन मंत्रों में नक्षत्रों के प्रति वैदिक ऋषियों की रहस्यपूर्ण उत्सुकता का भाव विद्यमान है। वैदिक यज्ञों की विधियाँ संपन्न करने के लिए ऋतु, अयन, दिनमान और लग्न आदि के शुभाशुभ के लिए ब्राह्मण युग में ज्योतिष का ज्ञान अनिवार्य समझा जाने लगा और ज्योतिष की इसी अनिवार्य आवश्यकता के कारण आगे चलकर षड्वेदांगों में उसको स्वतंत्र स्थान मिला।

ज्योतिष शास्त्र को पहले-पहल गणित और फलित, इन दो रूपों में स्वीकार किया गया। बाद में वह ‘स्कंधत्रय’ के नाम से जाना जाने लगा, जिसको सिद्धांत, संहिता और होरा, इन तीन भागों में विभाजित किया गया और फलतः उसका पंचरूपात्मक होरा, गणित, संहिता, प्रश्न और निमित्त में विकास हुआ। आज ज्योतिष का क्षेत्र इतना बढ़ गया है कि मनोविज्ञान, जीव विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, रसायन विज्ञान और चिकित्सा शास्त्र आदि अनेक विषयों तक उसका प्रवेश है।

आयुर्वेद के महान ज्ञान का इतिहास बहुत लंबा है। देवलोक और मनुष्यलोक दोनों में उसके प्रभाव, उपयोगिता और महत्व को एक जैसे पूजा भाव से स्वीकार किया गया है। आयुर्वेद शास्त्र के पहले उपदेष्टा सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हुए। बहुत समय तक यह उपयोगी ज्ञान देवलोक तक ही सीमित रहा। बाद में इंद्रादि देवों से उपकारी ऋषियों ने इस विद्या की शिक्षा प्राप्त कर उसे मर्त्य लोक में फैलाया।

पर्यावरण मानव जीवन का मूल आधार है। पर्यावरण के अनुसार ही सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, जैविक एवं अन्य क्रियाएँ प्रभावित होती हैं। इस प्रकार मानव जीवन में पर्यावरण का एक विशेष स्थान है। मानव का प्रत्येक पहलू पर्यावरण द्वारा प्रभावित होता है तथा समय अनुकूल उसे प्रभावित भी करता है। प्रकृति में हमें जो कुछ भी वायु, जल, मृदा, पादप, प्राणी आदि परिलक्षित होते हैं, वे सभी सम्मिलित रूप से पर्यावरण का सृजन करते हैं।

'पर्यावरण' शब्द की निष्पत्ति 'परि' और 'आवरण', दो शब्दों के सहयोग से होती है, जिसका अर्थ चारों ओर का आवरण है, जिसमें प्रकृतिजन्य समस्त तत्व आकाश, जल, अग्नि, वायु, ऋतुएँ, नदियाँ, वनस्पति, जीव-जंतु तथा संपूर्ण ब्रह्मांड समाहित हो जाते हैं। मानव और पर्यावरण अन्योन्याश्रित हैं। प्राणियों का प्रकृति के साथ अध्ययन ही पारिस्थितिकी है। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी विज्ञान के सूक्ष्म रहस्यों को समझा। अतः वैदिक संस्कृति, साहित्य और चिंतन में धर्म, अध्यात्म, नैतिकता एवं जीवन पद्धति के रूप में विकसित हो सका।

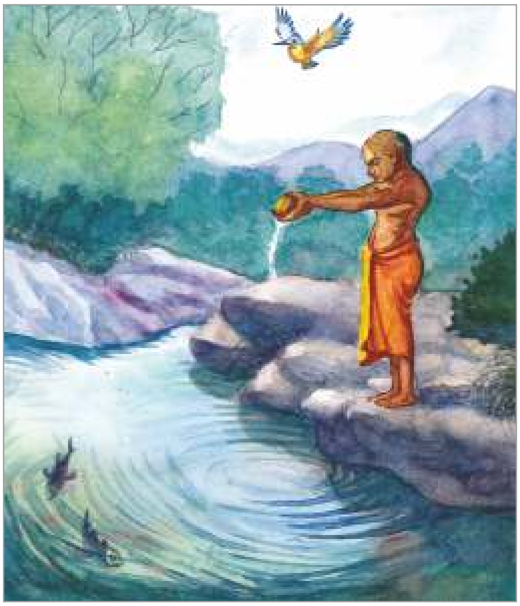

प्रारंभिक काल में पर्यावरण का अर्थ वातावरण माना जाता रहा है, लेकिन आज पर्यावरण का अर्थ इतना व्यापक हो चुका है कि इसमें संपूर्ण पृथ्वी, उसका वातावरण और इस धरती पर विद्यमान हर वस्तु को पर्यावरण का हिस्सा मान लिया गया है। पर्यावरण वह महाविज्ञान है जिसके अंतर्गत प्राणी विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा खगोल विज्ञान जैसे अनेक विज्ञान एक शाखा के रूप में विद्यमान हैं। आज 'पर्यावरण' शब्द आम बोलचाल शब्द बन गया है। इसे घर-घर में पहचाना जाने लगा है। विद्वानों ने माना है कि आज पर्यावरण शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है, वास्तव में यह अर्थ 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आया। उससे पूर्व इसका कोई ऐसा पारिभाषिक अर्थ नहीं था। पारिभाषिक दृष्टि से एक विशेष पर्यावरण जिसमें एक विशेष जीव वर्ग या समूह निवास करता है, 'निवास स्थल' कहलाता है। लघु क्षेत्रों में निवास करने वाले विशिष्ट जीव वर्गों के पर्यावरण को 'सूक्ष्म पर्यावरण' कहते हैं। पृथ्वी के भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्व एक अंतःक्रियात्मक तंत्र का निर्माण करते हैं जिसे 'मानव पर्यावरण' कहते हैं।

विभिन्न पर्यावरणविदों द्वारा पर्यावरण को परिभाषित किया गया है। यहाँ कतिपय प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं—विश्वकोश के अनुसार, 'पर्यावरण के अंतर्गत उन सभी दशाओं, संगठन एवं प्रभावों को सम्मिलित किया जा सकता है जो किसी जीव अथवा प्रजाति के उद्भव, विकास एवं मृत्यु को प्रभावित करते हैं।' इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार, 'पर्यावरण उन समस्त बाह्य प्रभावों का समूह है जो जीवों को भौतिक एवं जैविक शक्ति से प्रभावित करते रहते हैं तथा प्रत्येक जीव को आवृत्त किए रहते हैं।' वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग भारत सरकार, परिभाषा कोश के अनुसार, 'पर्यावरण चारों ओर की उन बाहरी दशाओं का संपूर्ण योग है जिसके अंदर एक जीव अथवा समुदाय रहता है या कोई वस्तु उपस्थित रहती है।'

अन्य पर्यावरणविदों में पी. जिन्सबर्ट, आर.एस. मैकाइवर, सोरोकिन, डेविस, के.आर. दीक्षित आदि की परिभाषाएँ भी उल्लेखनीय हैं। अतः सरल रूप में कहा जा सकता है कि पर्यावरण से अर्थ मानव के चारों ओर फैली परिस्थितियों के उस समूह से है जो मानव जीवन एवं उसकी क्रियाओं को प्रभावित करती है।

पर्यावरण के विषय क्षेत्र को मुख्य रूप से चार भागों—स्थलमंडल, वायुमंडल, जलमंडल एवं जैवमंडल के रूप में विभाजित कर सकते हैं।

एक पर्यावरण चिंतक ने पर्यावरण के प्रकारों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि पर्यावरण के अंतर्गत सभी जैविक तथा अजैविक घटक सम्मिलित हैं। पृथ्वी पर पाए जाने वाले समस्त प्राणी अपने जीवन के विकास के लिए पर्यावरणीय सहयोग लेते हुए अपने लिए अनुकूलता उत्पन्न करते हैं, जैसे—पक्षी घोंसले का निर्माण करते हैं तो मनुष्य कृषि, उद्योग तथा आविष्कारों द्वारा अनुकूलता के उपाय करते हैं। इस आधार को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण के निम्नलिखित तीन प्रकार हैं—1. **भौतिक पर्यावरण**, 2. **जैविक पर्यावरण** तथा 3. **सामाजिक पर्यावरण**। इन्हीं को आंतरिक, बाहरी और सामाजिक नाम भी दिया गया है। इन प्रकारों का अनेक अंग-प्रत्यंगों के आधार पर विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है।

मिट्टी के बरतनों में छिपा है भारतीय पारंपरिक विज्ञान

युगों-युगों से मिट्टी के बरतन (मृद्भांड), मिट्टी की विभिन्न मूर्तियाँ (मृण्मूर्तियाँ) न केवल विश्व की विभिन्न सभ्यताओं के बारे में जानने के केंद्र रहे हैं, बल्कि ये हमारे संपूर्ण भारतवर्ष के इतिहास, हमारी सनातनी प्राचीन व अक्षुण्ण संस्कृति, हमारी सनातनी परंपराओं को जानने के भी बहुत ही महत्वपूर्ण अंग व साधन रहे हैं। मिट्टी के बरतनों ने देश-दुनिया के पटल पर अपनी अनोखी, अद्‌भुत छाप छोड़ी है। वास्तव में मिट्टी के बरतनों में भारतीय पारंपरिक विज्ञान छिपा है और यही कारण है कि युगों-युगों से भारतीय संस्कृति में मिट्टी के बरतनों का उपयोग होता आया है। भारत का राजस्थान इस दृष्टि से (मिट्टी के बरतनों, मृद्भांड, मृण कला, टेराकोटा, पॉटरी इत्यादि के निर्माण व उनके गाँव-घरों में उपयोग के मामलों में) कुछ अधिक समृद्ध व संपन्न रहा है। यदि हम यहाँ मिट्टी के बरतनों, पॉटरी, मृद्भांड, मृण कला, टेराकोटा आदि के संदर्भ में बात करें तो

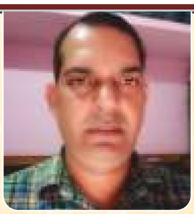

सुनील कुमार महला

संप्रति : स्वतंत्र लेखक, स्तंभकार व युवा साहित्यकार।

संपर्क : मोबाइल– 9828108858

ईमेल– mahalasunil@yahoo.com

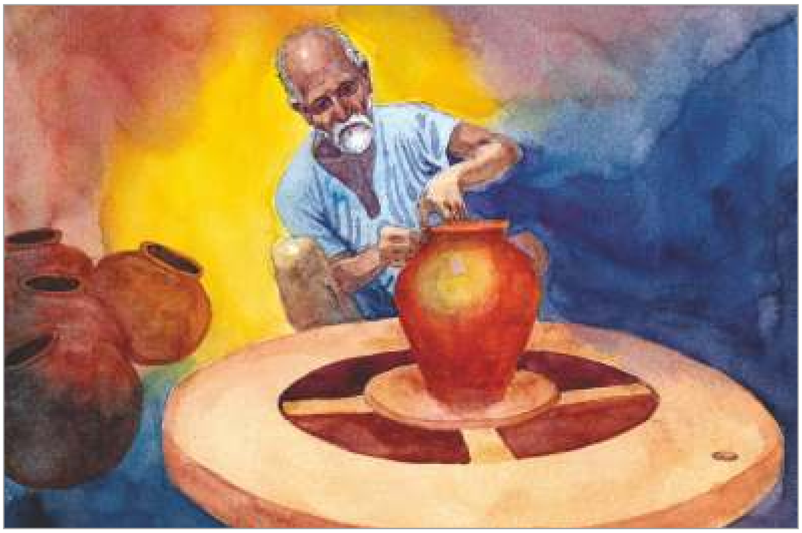

राजस्थान में जैसलमेर जिले का पोखरण, मेवाड़ (उदयपुर) का मोलेला व गोगून्दा तथा ढूंढाड़ (जयपुर) व मेवात स्थित हाड़ौता व रामगढ़ की मिट्टी की कला (मृण कला) की प्रसिद्धि देश में ही नहीं, अपितु विदेशों तक में फैली हुई है, जिनमें मिट्टी से बनी मूर्तियाँ ही नहीं, अपितु मिट्टी के बरतन बहुत ही महत्वपूर्ण व अहम् स्थान रखते हैं। मेवाड़ (उदयपुर व इसके समीप क्षेत्र) स्थित आहड़ सभ्यता, गिलूण्ड, बालाथल आदि के साथ ही हनुमानगढ़ का कालीबंगा पुरास्थल ऐसे स्थल रहे हैं जो पुरासंपदा के रूप में माटी की कला, मोहरें, मृद्भांड (मिट्टी के बरतन) व मृणशिल्प आदि राज्य के पुरा कला वैभव की महत्ता को रेखांकित करते रहे हैं। यहाँ मृण कला की बात मैं इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि मृण कला से ही हमारे घरों में प्राचीनकाल में इस्तेमाल किए जाने वाले मिट्टी के बरतन कहीं-न-कहीं जुड़े हुए हैं। वैसे मृण कला (मिट्टी से कलाकारी) को अंग्रेजी में 'टेराकोटा आर्ट' कहा जाता है।

नवपाषाण काल में कृषि व पशुपालन ने मानव को मिट्टी के बरतन (मृद्भांड) बनाने लिए प्रेरित व प्रोत्साहित किया। आज के युग में मृद्भांडों (मिट्टी के बरतनों) की अपनी उपयोगिता व महत्व है। लेकिन बड़ी विडंबना की बात है कि जिन मृद्भांडों से हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता की पहचान विश्व में रही है, आज हम इन मृद्भांडों (मिट्टी के बरतनों) की उपयोगिता भुलाते चले जा रहे हैं। हमारी युवा पीढ़ी तो धातु युग में खुशी मना रही है, वह मिट्टी के बरतनों के चक्कर में नहीं फँसना चाहती है और न ही इनके महत्व व उपयोगिता के साथ-साथ इनसे होने वाले स्वास्थ्य लाभों से ही अवगत होना चाहती है। संभवतः नवपाषाण काल में खाद्य सामग्री की अधिकता के कारण मानव को उसे (खाद्य सामग्री) संगृहीत

अथवा एकत्रित करने के लिए बरतनों की जरूरत पड़ी होगी। वास्तव में, मानव की इसी जरूरत ने मिट्टी के बरतन बनाने की कला को जन्म दिया था।

विश्व की विभिन्न सभ्यताओं में मिट्टी के बरतन मिले हैं, जिन्हें इतिहास की भाषा में 'मृद्‌भांड' (मिट्टी के भांड या मिट्टी के बरतन/मर्तबान) कहा जाता है। पाषाण काल के शुरुआती तीन कालों तक हमें मृद्‌भांड प्राप्त नहीं होते हैं। वास्तव में मध्य पाषाण काल, नवपाषाण काल और ताम्र पाषाण काल के दौरान मृद्‌भांडों का निर्माण किया जाता था। अधिकतर पुरातत्व स्थलों से इतनी बड़ी संख्या में मृद्‌भांड कैसे और क्यों मिलते हैं, इसका सटीक व सही जवाब यह है कि मिट्टी के बरतन मजबूती में धातु के बरतनों से कमजोर होते हैं, अतः वे बड़ी आसानी से टूट जाया करते थे। टूटने के बाद प्राचीन लोग उन्हें अपने आस-पास ही फेंक दिया करते थे जिसके कारण हमें इतनी बड़ी संख्या में मिट्टी के बरतन मिल जाते हैं। मोहनजोदड़ो, नौसारों, हड़प्पा एवं चन्हूदड़ो से मृद्‌भांड निर्माण के भट्ठे मिले हैं। हड़प्पावासी मृद्‌भांडों पर क्रमशः त्रिभुज, वृत्त, वर्ग आदि ज्यामितीय आकृतियों, पीपल की पत्ती, खजूर, ताड़, केला आदि वनस्पतियों, वृषभ, हिरण, बारहसिंघा, मोर, सारस, बतख आदि पशु-पक्षियों एवं मछली का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। शवाधान से प्राप्त मृद्‌भांडों पर सामान्यतः हाजा पक्षी (मोर) का अंकन हुआ है। हड़प्पा के मृद्‌भांडों पर जाल के साथ मछुआरे का चित्रण एवं दूध पिलाती हिरणी का चित्रण, मोहनजोदड़ो के मृद्‌भांड पर कनखजूरे का अंकन तथा लोथल के मृद्‌भांड पर प्यासा कौआ और चालाक लोमड़ी की आकृति का अंकन किया गया है।

दुनिया के अब तक के सबसे प्राचीनतम मृद्‌भांड के अवशेष चीन से प्राप्त हुए हैं, जिनकी तिथि करीब 18,000 ईसा पूर्व बताई गई है। दूसरे शब्दों में यह बात कही जा सकती है कि खाना पकाने और भोजन परोसने तथा पानी ढोने के लिए इस्तेमाल होने वाले मिट्टी के बरतनों का निर्माण कम-से-कम 20,000 साल पहले चीन में किया गया था। मिट्टी के बरतन, सजावटी कलाओं में सबसे पुराने और सबसे व्यापक माने जाते हैं। भारतीय गाँवों में मिट्टी के बरतनों का इतिहास भारत की सबसे पुरानी सभ्यता, सिंधु घाटी सभ्यता से मिलता है। यहाँ हस्त-निर्मित और पहिया-निर्मित दोनों प्रकार के बरतन मिलते हैं। नवपाषाण काल के साथ ही मिट्टी के बरतनों में काफी सुधार देखने को मिला। चाक (जिस पर मिट्टी के बरतन बनाए जाते हैं) के आविष्कार के साथ ही मिट्टी के बरतनों के अनेक स्वरूप सामने आने लगे।

चीन के अतिरिक्त भी विश्व के प्रत्येक हिस्सों में समय-समय पर खुदाई के दौरान पुरातत्वविदों द्वारा मिट्टी से बने अनेक बरतन या वस्तुएँ प्राप्त की गई हैं और मिट्टी के बरतनों का सबसे पुराना प्रमाण जापान में 10,000 ईसा पूर्व का है। मिट्टी के बरतनों के मामलों में चीन व जापान दोनों ही देशों का इतिहास काफी पुराना है। वैसे यह भी जानकारी मिलती है कि चीन के जियांग्शी प्रांत में जियानरेन्डोंग गुफा में भी मिट्टी के बरतन पाए गए हैं।

भारत में प्राचीनतम मृद्‌भांड (मिट्टी के बरतन) के अवशेष लहुरादेवा से प्राप्त हुए जिसे 7,000 ईसा पूर्व का माना जाता है। इस पुरास्थल की खुदाई डॉ. राकेश तिवारी जी ने कराई थी। भारत में चाक पर मिट्टी के बरतन का प्रयोग मेहरगढ़ काल संख्या 2 से शुरू हुआ जिसकी तिथि 5,500 ईसा पूर्व से लेकर 4,800 ईसा पूर्व है। सिंधु सभ्यता के उदय के बाद मानो भारत में मृद्‌भांड (मिट्टी के बरतन) बनाने की परंपरा में एक क्रांति-सी आ गई थी और यहाँ से अनेक प्रकार के मिट्टी के बरतनों (मृण पात्रों, मृद्‌भांडों) आदि का विकास होना शुरू हुआ तथा इस काल में बरतनों को रंगने तथा उन पर कलाकृतियाँ बनाया जाना शुरू हो सका। मृद्‌भांड पर बनी कलाकृतियाँ प्राचीनकाल के समाज और संस्कृति पर प्रकाश डालने का कार्य करती हैं।

प्राचीन यूनानियों ने मिट्टी से अनेक प्रकार के बरतन बनाए थे और भोजन पकाने या भंडारण आदि के लिए उस समय बड़े बरतनों का उपयोग किया जाता था। लोगों के खाने-पीने के लिए छोटे कटोरे

और प्याले बनाए जाते थे। यहाँ तक कि सजावट के लिए भी बरतनों (फूलदान वगैरह) का बखूबी उपयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त, अंतिम संस्कार (जलाने) के बाद अस्थियों की राख तक को मिट्टी के बरतनों में दबा दिया जाता था। भारत में आठ हजार ई.पू. बरतनों के इस्तेमाल किए जाने की जानकारी मिलती है। हड़प्पा सभ्यता के मिट्टी के बरतनों का रंग लाल-गेरुआ था। काली मिट्टी जो 'करिया मिट्टी' और 'सफेद मिट्टी' जो 'पौंड्रा मिट्टी' कहलाती है, बरतन बनाने के काम के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं, लेकिन इसमें भी काली मिट्टी सबसे अच्छी व शक्तिशाली समझी जाती है, जिससे बरतन बनाए जा सकते हैं। यह भी जानकारी मिलती है कि खाना पकाने, भोजन परोसने और पानी ढोने के लिए इस्तेमाल होने वाले मिट्टी के बरतनों का निर्माण कम-से-कम 20,000 साल पहले चीन में किया गया था। यह आश्चर्यजनक बात नहीं है कि प्रागैतिहासिक मानव ने मिट्टी के उपयोगी गुणों की खोज कर ली थी। जापान के होंशू द्वीप से मिट्टी के प्राचीन बरतन मिले हैं।

"राजस्थान के बूंदी जिले के ठिकरदा गाँव में आज भी पुरानी संस्कृति जिंदा है। यहाँ पर करीब 500-1000 घर ऐसे हैं, जहाँ मिट्टी के बरतनों को बनाने का काम किया जाता है। राजस्थान के बांसवाड़ा जिले के रतलाम मार्ग पर स्थित बोरतलाब गाँव की पहचान मिट्टी के बरतन बनाने के नाम से होती है। इस गाँव में पिछले 40-45 साल से प्रजापत समाज के लोग मिट्टी के मटके व बरतन बना रहे हैं। राजस्थान के जयपुर, बीकानेर, जैसलमेर, अलवर और सवाई माधोपुर मिट्टी के बरतनों के लिए प्रसिद्ध हैं। जयपुर से सटे चौमूं कस्बे के समीप बसा हाड़ौता गाँव की कलागत पहचान माटी की कला के रूप में रही है तथा आज भी यहाँ पारंपरिक मृण पात्रों को बनाने की परंपरा के विकसित रूप को देखा जा सकता है। प्रमुख रूप से यहाँ पर घरेलू उपयोग में आने वाले मिट्टी के बरतन तो बनते ही हैं, बड़े आकार के मृद्भांड व सजावटी उपादानों के लिए भी हाड़ौता के मृण कलाकार प्रसिद्ध रहे हैं।"

भारतीय सभ्यता संस्कृति अपने आप में अनूठी रही है और यहाँ बहुत ही प्राचीन अर्थात ऋषि-मुनियों के समय से ही मिट्टी के बरतनों का उपयोग होता आया है। प्राचीन काल में और आज भी कहीं-कहीं गाँवों, ढाणियों में मिट्टी के बरतनों का बहुत ज्यादा प्रयोग किया जाता है। इन बरतनों में क्रमशः मटका या घड़ा, परात, तवा, सुराही, गुल्लक, हांडी, ढकणी या ढाकणी, बिलौना (दूध बिलौने के लिए इस्तेमाल), दीपक, कुल्हड़, तावणी, कुंडा, कटोरा, पारी, सिकोरा (पक्षियों के पानी पीने के लिए) शामिल किए जा सकते हैं। आज राजस्थान के बहुत से गाँवों में मिट्टी के जल पात्र यथा मांग्या, तपक्या, तौलडी, मटका-मटकी, माट, झाल, मूण, सुराही, लोटिया, घड़ा व घड़िया आदि को चाक पर बनाकर अपनी परंपराओं, सभ्यता-संस्कृति का निर्वहन किया जा रहा है। भोजन पकाने व परोसने के लिए हांडी, सांदकी, घामला, कडकल्ला, कूंडी, कूंडा, चामली, चापटी, धीलडी, कढ़ावणी, बिलोवणी, तवा, सकोरा, कुल्लड़, करवा, कूलडा, कूलडी, झावा, सिराई, करी तथा झोलवा आदि मृण पात्रों को बनाया जाता है। इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि वैदिक लोग चार प्रकार के मिट्टी के बरतनों से परिचित थे—काले और लाल बरतन, काले-स्लिप्ड बरतन, चित्रित ग्रे बरतन और लाल बरतन।

हमारे देश के राज्य उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर जिले का खुर्जा देश में इस्तेमाल होने वाले चीनी मिट्टी के एक बड़े हिस्से की आपूर्ति करता है, इसलिए इसे कभी-कभी 'सिरेमिक सिटी' भी कहा जाता है। यह मिट्टी के बरतनों के लिए बहुत ही प्रसिद्ध है। वैसे हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा जिले के गाँव काली मिट्टी के बरतनों के लिए विख्यात हैं और राजस्थान में जैसलमेर के पोखरण में नक्काशीदार सजावटी पैटर्न के साथ शैलीगत रूप हैं। राजस्थान के दौसा जिले के बसवा कस्बे के मिट्टी के बरतन भी खास पहचान रखते हैं। राजस्थान के बीकानेर जिले के भी मिट्टी के बरतन काफी प्रसिद्ध हैं। राजस्थान के सवाईमाधोपुर में फूलडोल मेले के दौरान मिट्टी के बरतन खरीदने की बरसों पुरानी परंपरा है। राजस्थान के नागौर के चेनार गाँव के कुम्हार मिट्टी के बरतन व मूर्तियाँ बनाने और उन पर चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध हैं।

राजस्थान के बूंदी जिले के ठिकरदा गाँव में आज भी पुरानी संस्कृति जिंदा है। यहाँ पर करीब 500-1000 घर ऐसे हैं, जहाँ मिट्टी के बरतनों को बनाने का काम किया जाता है। राजस्थान के बांसवाड़ा जिले के रतलाम मार्ग पर स्थित बोरतलाब गाँव की पहचान मिट्टी के बरतन बनाने के नाम से होती है। इस गाँव में पिछले 40-45 साल से प्रजापत समाज के लोग मिट्टी के मटके व बरतन बना रहे हैं। राजस्थान के जयपुर, बीकानेर, जैसलमेर, अलवर और सवाई माधोपुर

मिट्टी के बरतनों के लिए प्रसिद्ध हैं। जयपुर से सटे चौमूं कस्बे के समीप बसा हाड़ौता गाँव की कलागत पहचान माटी की कला के रूप में रही है तथा आज भी यहाँ पारंपरिक मृण पात्रों को बनाने की परंपरा के विकसित रूप को देखा जा सकता है। प्रमुख रूप से यहाँ पर घरेलू उपयोग में आने वाले मिट्टी के बरतन तो बनते ही हैं, बड़े आकार के

मृद्भांड व सजावटी उपादानों के लिए भी हाड़ौता के मृण कलाकार प्रसिद्ध रहे हैं। जयपुर की ब्ल्यू पॉटरी तो प्रसिद्ध है ही। गोगुन्दा के कुंभकार दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाले मृण पात्रों के साथ ही कृषि कर्म, तीज-त्यौहार पर विशेष मृण पात्रों को बनाते हैं। यहाँ के आदिवासी समाज आज भी अपने दैनिक उपयोग के बरतनों के रूप में गोगुन्दा में बने माटी के पात्रों को खरीद कर ही परंपरा का निर्वाह कर रहे हैं। कुएँ से जल निकालने का मृण पात्र 'गेड' भी यहीं के कुंभकार बनाते हैं। मिट्टी के पात्रों में कुंजा, कुंडी, परात, गिलास, खरल, कुलड़ी, सुराही, कुल्हड़ (सिकोरा) व लोटे सम्मिलित होते हैं। उत्तर प्रदेश के निजामाबाद जिले के गाँव भी चाँदी के पैटर्न वाली काली मिट्टी के बरतनों के लिए काफी प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार की मिट्टी के बरतन आंध्र प्रदेश के बीदर के काम से मिलते-जुलते हैं।

आज प्राकृतिक चिकित्सक मिट्टी के बरतनों में खाना खाने के लिए हम सभी को सलाह देते हैं तो उसका प्रमुख कारण यह है कि मिट्टी के बरतनों में पकाया जाने वाला खाना विभिन्न औषधीय तत्वों से सराबोर रहता है, उसके पोषक तत्व हमेशा बने रहते हैं और वे जल्दी नष्ट नहीं होते। मिट्टी के बरतनों में बने खाने में भरपूर आयरन, फास्फोरस, कैल्शियम और मैग्नीशियम मौजूद होते हैं, जो हमारे स्वास्थ्य को हमेशा अच्छा रखने में अपनी भूमिका निभाते हैं। मिट्टी के बरतनों में छोटे-छोटे असंख्य छिद्र होते हैं, जिससे उनमें पकने वाले भोजन को आग और नमी हर तरफ से बराबर मिलती रहती है। अधिक तेल व वसा को मिट्टी के बरतन कुछ हद तक सोख लेते हैं। याद रखिए कि मिट्टी के बरतनों में खाना पकता है, गलता नहीं है। हमारे शरीर को 18 प्रकार के सूक्ष्म पोषक तत्व चाहिए होते हैं, जो मिट्टी के बरतनों से नष्ट नहीं होते हैं। साथ ही मिट्टी में किसी भी प्रकार का रसायन या अन्य हानिकारक तत्व भी नहीं मिला होता है जिससे भोजन हमेशा ताजा व उत्तम ही रहता है। अन्य बरतनों की अपेक्षा मिट्टी के बरतन में खाना जल्दी से ठंडा नहीं होता, क्योंकि मिट्टी अधिक समय तक गर्म रहती है व अंदर का तापमान भी जल्दी से नीचे नहीं गिरता। इसलिए मिट्टी के बरतनों में पके खाने को फिर से गर्म करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। भोजन को जब हम फिर से गर्म करते हैं तो उसके ज्यादातर पोषक तत्व खत्म हो जाते हैं जो मिट्टी के बरतन में नहीं होता।

मिट्टी के बरतन की यह भी सबसे बड़ी उपलब्धि है कि ये हमारे भोजन को स्वास्थ्यवर्धक बनाने के साथ-साथ उसे हमारे लिए स्वादिष्ट व सुगंधित भी बनाते हैं। वास्तव में सेहत को अच्छा व दुरुस्त बनाने के लिए मिट्टी के बरतनों में खाना बनाना अच्छा ही नहीं, अपितु सर्वोत्तम माना जाता है। लोहे के बरतनों में भोजन पकाना स्वास्थ्य के लिहाज से अच्छा है, पीतल के बरतन में भोजन पकाने से हमारे शरीर को कई प्रकार के पोषक तत्व मिलते हैं, काँसे के भी अनेक लाभ हैं और स्टील भी ठीक है, लेकिन खाना पकाने के लिहाज से एल्युमिनियम धातु के बरतनों को सबसे खराब माना जाता है। आज हमारे ज्यादातर घरों में इस धातु के बरतन मिल जाते हैं। एल्युमिनियम बॉक्साइट का बना होता है, इसमें बने खाने से शरीर को

सिर्फ नुकसान होता है। आयुर्वेद के अनुसार, यह आयरन और कैल्शियम को सोखता है, इसलिए इससे बने पात्रों का उपयोग नहीं करना चाहिए। ब्रास, नॉनस्टिक, एल्युमिनियम व स्टील ने आज हमारे रसोईघरों में अपना सिक्का जमा लिया है, लेकिन अब फिर से बदलते दौर में मिट्टी के बरतनों का चलन वापस ट्रेंड में आ रहा है। इन दिनों बाजार में मिट्टी से बने कुल्हड़ में चाय, पिज्जा, लस्सी, जूस आदि का जायका खूब लिया जा रहा है। हम हमारी सनातनी सभ्यता-संस्कृति की ताकत को पुनः पहचान रहे हैं।

परमाणुवाद के भारतीय जनक : कणाद

अनादि काल से भारतवर्ष का परंपरागत वैज्ञानिक दृष्टिकोण बहुत ही विस्तृत और विलक्षण रहा है। आर्यभट्ट, सुश्रुत और चरक सभी के शोध कार्य पश्चिम-राष्ट्रों से लेकर संपूर्ण विश्व में भारतीय वैज्ञानिक दृष्टिकोण का डंका बजाते रहे हैं। जिस प्रकार विमानन प्रौद्योगिकी के अग्रणी आचार्य भारद्वाज (800 ईसा पूर्व) ने अंतरिक्ष विज्ञान और उड़ने वाली मशीनों पर एक ग्रंथ 'यंत्र सर्वस्व' लिखा, उसी प्रकार ऋषि कणाद (छठी शताब्दी से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य अनुमानित) हैं, जिनको जहाँ-तहाँ 'कश्यप', 'कणभक्ष' आदि नामों से भी जाना जाता है। उन्होंने ही प्राचीनतम भारतीय भौतिकी से संबंधित 'वैशेषिक दर्शन' की स्थापना की थी।

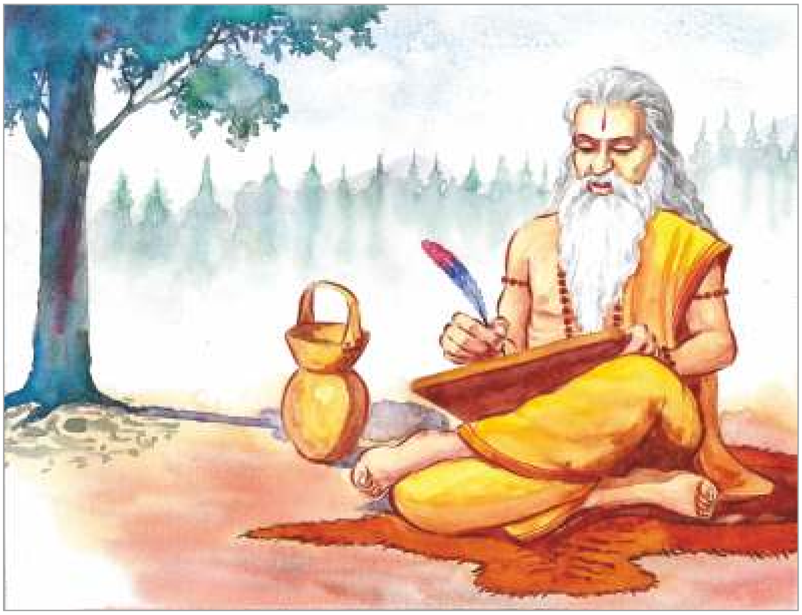

कपिल मेवाड़ा

जन्म : 10 जुलाई, 1993, चितोड़िया हेमा, सीहोर, मध्य प्रदेश।

शिक्षा : जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर से एग्रीकल्चरल इंजीनियरिंग में बी.टेक.।

संप्रति : उत्तर प्रदेश सरकार में कृषि विभाग में कार्यरत।

प्रकाशन : दो पुस्तकें प्रकाशित हैं—कलियुग रामायण और ढाई आखर इश्क का।

संपर्क : मोबाइल— 9144669799, 8770729056

ई-मेल— kapilcae@gmail.com

वैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण

उन्हें 'कण' अथवा 'परमाणु भक्षण कर्ता' के रूप में जाना जाता रहा। उन्होंने संस्कृत पाठ 'वैशेषिक सूत्र' में भौतिकी और दर्शन के लिए एक परमाणुवादी दृष्टिकोण की नींव विकसित की। उनके पाठ को 'कणाद सूत्र' के रूप में भी जाना जाता है। उनके द्वारा स्थापित दर्शन में एक परमाणुवादी सिद्धांत का प्रस्ताव करके, तर्क और यथार्थवाद को लागू कर ब्रह्मांड के निर्माण और अस्तित्व की व्याख्या की गई है।

कणाद ने प्राकृतिक नियमों द्वारा ब्रह्मांड के विकास पर ध्यान केंद्रित किया। कणाद भारत के उन ऋषियों में से थे, जो भगवान के बिना अस्तित्व को समझने और अपने दम पर मोक्ष तक पहुँचने की मनुष्य की क्षमता में विश्वास करते थे।

अणुवाद अथवा परमाणुवाद का सिद्धांत

कणाद का प्रस्ताव था कि परमाणु पदार्थ का एक अविनाशी कण है। यह अविभाज्य है, क्योंकि यह एक ऐसी अवस्था है जिस पर कोई माप नहीं लगाया जा सकता है। उन्होंने परमाणुओं के गुणों को निर्धारित करने के लिए अपरिवर्तनीय तर्कों का प्रयोग किया और यह भी कहा कि अणु की दो अवस्थाएँ हो सकती हैं—परम विश्राम और गति।

उनके अनुसार, सब-कुछ उप-विभाजित किया जा सकता है, लेकिन यह उप-खंड हमेशा के लिए नहीं चल सकता है और सबसे छोटी इकाइयाँ (परमाणु) होनी चाहिए, जिन्हें विभाजित नहीं किया जा सकता है, जो शाश्वत हैं, जो अलग-अलग तरीकों से अद्वितीय पहचान के साथ जटिल पदार्थ और शरीर उत्पन्न करती हैं।

कणाद की प्रणाली छह गुणों (पदार्थ) की बात करती है जो कि जानने योग्य हैं। उनका दावा था कि ये सभी ब्रह्मांड में प्रत्येक वस्तु का वर्णन करने के लिए पर्याप्त हैं, जिसमें पर्यवेक्षक भी शामिल हैं। ये छह श्रेणियाँ हैं—द्रव्य (पदार्थ), गुण (गुणवत्ता), कर्मण (गति), काल (समय), विसेसा (विशेष) और समवाया (अंतर्निहित)। द्रव्य के नौ वर्ग हैं, जिनमें से कुछ परमाणु हैं, कुछ गैर-परमाणु हैं और अन्य को सर्वव्यापी कहा है।

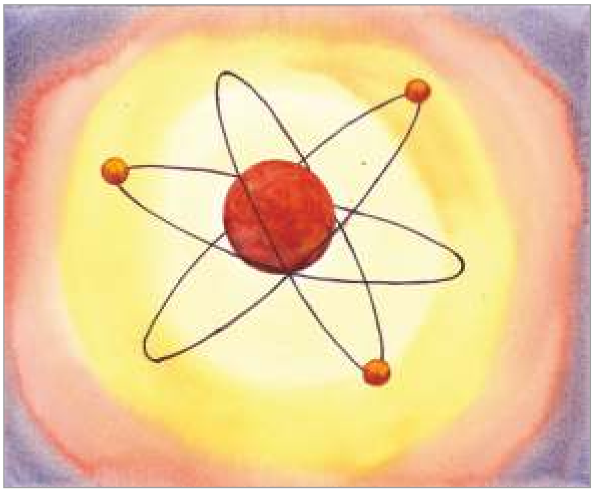

उनके मतानुसार, परमाणु का आकार 'गोल' होना चाहिए, क्योंकि यह सभी आयामों में समान होता है तथा सभी पदार्थ चार प्रकार के परमाणुओं से बने होते हैं, जिनमें से दो में द्रव्यमान होता है और दो द्रव्यमान रहित होते हैं।

अन्य सिद्धांत एवं दृष्टिकोण

ऋषि कणाद ने न्यूटन से लगभग हजारों वर्ष पूर्व ही गति के नियम खोज लिए थे। प्रियांक भारती ने अपने शोधपत्र 'आचार्य कणाद : फादर ऑफ फिजिक्स एंड द इन्वेंटर ऑफ लॉ ऑफ मोशन' में बहुत विस्तृत व सटीक रूप से इस बात का दावा भी किया है।

वैशेषिक सूत्र के दसवें अध्याय में 373 श्लोक हैं, जिसमें से निम्नलिखित श्लोक गति के नियम को समझाते हैं—

पहले नियम को वैशेषिक सूत्र के प्रथम अध्याय के पहले भाग में 20वें श्लोक में लिखा गया—

संयोगविभगावेगानं कर्म समानम, न द्रव्यानां कर्म,
द्रव्यश्रय्यगुणावां संयोगविभागेस्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम।

दूसरे गति के नियम में—

नोदनविससभावांनोर्ध्वं न ह्यिग्गगमनं प्रयत्नविशेषातनोदनविशेष।

तीसरा नियम 'कार्य-विरोधि-कर्म' दिया है। इन सभी श्लोकों का अर्थ जस-का-तस वही है जो न्यूटन का सिद्धांत कहता है। उदाहरण के तौर पर, आचार्य कणाद और न्यूटन के सिद्धांत की समानता इस प्रकार समझी जा सकती है—

न्यूटन का गति का तीसरा सिद्धांत

प्रत्येक क्रिया की सदैव बराबर एवं विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होती है।

कणाद का गति का तीसरा सिद्धांत

कार्य विरोधी कर्म यानी कार्य (एक्शन), विरोधी (अपोजिट), एक्शन (यहाँ इसका आशय रिएक्शन है)।

उनके द्वारा संकलित ज्ञान के कुछ संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैं—

- वास्तविकताओं के नौ घटक हैं : परमाणुओं के चार वर्ग (पृथ्वी, जल, प्रकाश और वायु), अंतरिक्ष, समय, दिशा, आत्माओं की अनंतता, मन (मानस)।
- सृष्टि की प्रत्येक वस्तु परमाणुओं से बनी होती है जो बदले में एक-दूसरे से जुड़कर अणु बनाते हैं। परमाणु शाश्वत हैं और उनके संयोजन अनुभवजन्य भौतिक जगत का निर्माण करते हैं।
- व्यक्तिगत आत्माएँ शाश्वत हैं और एक समय के लिए भौतिक शरीरों में व्याप्त हैं।
- अनुभव की छह श्रेणियाँ हैं—पदार्थ, गुणवत्ता, गतिविधि, सामान्यता, विशिष्टता और निहितता।
- पदार्थों (द्रव्य) के कई लक्षण रंग, स्वाद, गंध, स्पर्श, संख्या, आकार, युग्मन और खोलना, प्राथमिकता और भावी पीढ़ी, समझ, सुख और दर्द, आकर्षण और घृणा, और इच्छाओं के रूप में दिए गए हैं।

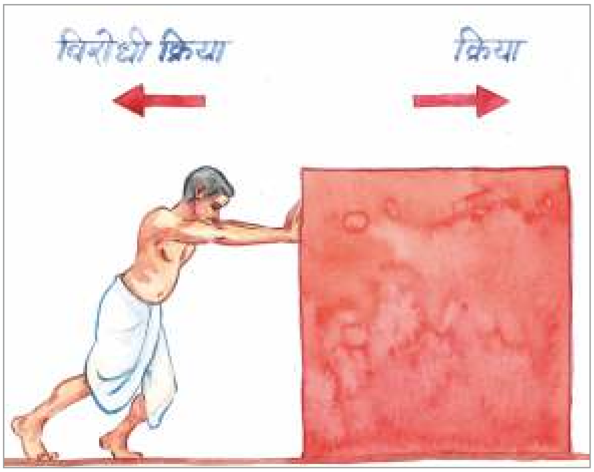

ऋषि कणाद की अवधारणा आधुनिक युग के एवोगेड्रो और डॉल्टन की अवधारणाओं से शत-प्रतिशत मेल खाती है, किंतु परिस्थितिवश एवं दुर्भाग्यवश उनके द्वारा संकलित और उपार्जित ज्ञान का विश्वभर में सही समय पर प्रसार नहीं हो सका और भारतीय वैज्ञानिक समुदाय मार्गदर्शन से अछूता रह गया।

गाँवों से भी मिटने लगीं लोक धारणाएँ

मनमोहक वातावरण, घंने जंगलों, ठंडी हवाएँ तथा चाँदनी रात और इनमें बिखरते सौंदर्यों से भरपूर गाँवों में लोग पहले शरीर के स्पंदन से तालमेल बिठाकर मौसम के बारे में अनुमान लगा लिया करते थे। उस समय के लोग नितांत प्रकृति के साथ रहते थे। छोटे-छोटे घर और बाहर खुला मैदान, खेत, वृक्षों के झुरमुट के माहौल में रहते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी के अनुभवों द्वारा प्रकृति के स्वभाव को जानते-पहचानते थे। उनकी लोक धारणाएँ निर्मूल नहीं होती थीं। वे अनुभव की ठोस भूमि पर सनातन काल से अपनी प्रासंगिकता सिद्ध करती आई हैं। उनकी धारणा थी कि

यदि रोहिणी बरस गई तो लगभग एक माह वर्षा नहीं आएगी। रोहिणी में वर्षा होने के एक माह बाद अर्थात् 'मृगशिरा' बीतने पर आर्द्रा की वर्षा घनश्याम की गुण-दोषों के साथ झड़ाझड़ धरती पर आती है। इसके आने पर नदियों में यौवन आता है।

उतरते जेठ की गर्म हवाएँ दोपहर को झुलसा देती थीं। साँझ उतरते ही सारा घर आंगन खाटों पर सिमट जाता था। आकाश की पोथी के पन्ने धीरे-धीरे खुलने लगते थे। शब्द-शब्द, पाँत-पाँत उभर आते थे। खाट पर लेटे हुए बूढ़े-बुजुर्ग आकाश को मौन आँखों से बाँचते रहते थे। वे लोग तो कृषक संस्कृति में ऋषि परंपरा के व्यक्ति हुआ करते थे। उनके पास खगोल-भूगोल के जीवन सुपुक्त प्रत्यक्ष अनुभवों की ठसाठस भरी पोटली हुआ करती थी। ध्रुव की भक्ति और तारे के रूप में अटल महिमा भी बच्चों को घर में ही बता दिया जाता था। ज्ञान का यह सिलसिला सप्तऋषि, हिरनी, ग्वालझुमका, भोर का तारा के बारे में कभी रात के निचले पहर में, कभी दोपहर के ठहरे क्षणों में तो कभी झपकझूम अँधेरे में डूबी गाँव की गलियों में इसकी शिक्षा बच्चों को दे दी जाती थी। लोक की ये मान्यताएँ सनातनी हैं। लंबे अरसे से अपनी उपादेयता की सिद्धि का आसन जमाए हुए हैं। इनकी धार अभी भोथरी नहीं हुई है। आज भी इसका सही और सटीक स्वभाव बताने का साहस कुछ लोग करते हैं। प्रकृति से सापेक्ष संबंध होने के कारण वे हवा का रुख, दबाव, आर्द्रता, बादलों का रंग, पक्षियों की भिन्न-भिन्न आवाजों आदि को मिला-जुला कर मौसम संबंधी भविष्यवाणी करते हैं। समय के साथ जीवन में अनेक बदलाव आए हैं। मौसम के स्वभाव की जानकारी के लिए मौसम वैज्ञानिकों पर निर्भरता बढ़ी है। फिर भी कुछ उक्तियाँ आज भी कही-सुनी जाती हैं।

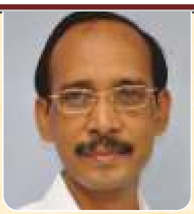

मनोज कुमार कपरदार

संप्रति : संपादक, रांची एक्सप्रेस (हिंदी दैनिक)।

प्रकाशन : दो दशक से पूर्णकालिक और अंशकालिक तौर पर पत्रकारिता में सक्रिय। विभिन्न विषयों पर सैकड़ों आलेख क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा आकाशवाणी से प्रसारित। दो पुस्तकें 'झारखंड दर्पण' और 'झारखंड की आदिवासी कला परंपरा' प्रकाशित।

सम्मान : पुलिस पब्लिक हेल्पलाइन राष्ट्रीय सम्मान, झारखंड सेवा रत्न सम्मान, साहित्य शिखर सम्मान व काव्य शिरोमणि सम्मान और जनप्रिय लेखक 2022 सम्मान से सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 8210924546, 9771177585

ईमेल– manojkapardarjh@gmail.com

घाघ

उत्तर भारत में घाघ, भडुरी प्रकृति विशेषज्ञ माने जाते थे। उसी तरह बंगाल की भूमि से जुड़ी खना की कहावतें भी कही-सुनी जाती हैं। झारखंड के डॉ. ए.के. झा के धरा गगन सिद्धांत को भी काफी सटीक माना गया। खना की कृषि, परिवार, प्रकृति संबंधी उक्तियाँ बंगाल के गाँव-गाँव में प्रचलित ही नहीं, बल्कि विश्वसनीय भी मानी जाती हैं। समय के साथ कृषि की तकनीक व रख-रखाव में बदलाव आया है। फिर भी खना की उक्तियों को वाक्य की रसमयता के लिए भी कहा-सुना जाता है। अनावृष्टि की आशंका को सचेत करते हुए खना की उक्ति है—

खना बले सुनो स्वामी
श्रावण भादो नाइको पानी
दिने जल, राते तारा
एई देखबे, दुःखेर सारा।

वर्षा ऋतु में यदि दिन में वृष्टि हो और रात को तारे निकल आएँ तो स्वामी, यह मानना चाहिए कि उस वर्ष अनावृष्टि अवश्यंभावी है।

ज्योतिष और नक्षत्रों के ज्ञान व बादलों के आकार, रंग को भी खना ने अपनी भविष्यवाणियों का माध्यम बनाया—

बुध राजा, शुक्रोतारा मंत्री यदि होए
शस्य होबे खेते पुरा नाहिक संशय

वर्ष का राजा बुध ग्रह हो और उसका मंत्री शुक्र तारा हो तो उस वर्ष धरती के हरी-भरी रहने में कोई संशय नहीं।

खना के व्यक्तिगत जीवन के बारे में यद्यपि अधिक जानकारी नहीं मिलती, परंतु उसकी कहावतों में अकसर वराहमिहिर का नाम आता है, जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि वह छठी शताब्दी के आस-पास की रही होगी। 'खना' उसका वास्तविक नाम था या नहीं, इस विषय पर भी काफी मतभेद है। कुछ विद्वान तो उसे क्षण-क्षण की बात कहने वाली के कारण 'क्षण' नाम मानते हैं, जो बाद में लोक भाषा में परिवर्तित होकर 'खना' हो गया होगा। खना वास्तव में कोई विदुषी महिला होगी, जिसका कृषि के हर पहलू पर जैसे जुताई, कटाई, फसल के नियमों पर पूरा अधिकार होगा। इसी के साथ खना को ज्योतिष गणना, नक्षत्रों की स्थिति, पारिवारिक मनोविज्ञान व पशु-पक्षियों की जानकारी का भी पूरा ज्ञान था।

सदियों पहले जब न तो टीवी-रेडियो थे, न सरकारी मौसम विभाग, ऐसे समय में घाघ और भडुरी की कहावतें खेतिहर समाज का पीढ़ियों से पथ-प्रदर्शन करते आई हैं। झारखंड के गाँवों में आज भी ये कहावतें लोकप्रिय हैं। ग्रामीणों की धारणा है कि घाघ सबसे अच्छे प्रकृति विज्ञानी थे और उनकी कहावतें प्रायः सही हैं। वे कहते थे—

सावन शुक्ला सप्तमी, जो गरजै अधिरात
बरसै तो झुरा परै, नाहीं समौ सुकाल।

अर्थात् यदि सावन सुदी सप्तमी को आधी रात के समय बादल गरजे और पानी बरसे तो झूरा यानी सूखा पड़ेगा, न बरसे तो समय अच्छा बीतेगा। झारखंड के डॉ. ए.के. झा ने भी मौसम विज्ञान और प्रकृति विज्ञान को बहुत ही सरल तरीके से बताने का प्रयास किया है। मौसम विज्ञान के क्षेत्र में कई दशक तक कार्य कर चुके डॉ. ए.के. झा धरा गगन सिद्धांत के प्रणेता थे। वे मौसम पूर्वानुमान से किसानों को विशेष तौर पर जागरूक और शिक्षित करने का कार्य करते थे। प्रकृति विज्ञान पर उनके विलक्षण ज्ञान और अध्ययन के बारे में सीधे शब्दों में कहें तो वह चलता-फिरता मौसम पूर्वानुमान उपग्रह थे। वे कहते थे—

डॉ. ए.के. झा

चॉड़े चॉड़े, धुरि धुरि
बातास जदि दिशा बदले
गरजे बदरिया जदियो कम
हिया हुंआ दमे बइरसे।

अर्थात् यदि हवा की दिशा जल्दी-जल्दी बदलती रहे। पूरब से हवा की दिशा पश्चिम या उत्तर या उत्तर से पूरब की ओर जाए और बादल कम भी गरजे तो बारिश ज्यादा होने की संभावना है। डॉ. ए.के. झा मौसम विज्ञान के माध्यम से स्वास्थ्य की जानकारी भी देते थे। वे कहते थे—

आढ्धी तूफान जे बछरे
सामान्य से बेसी होवेहे
पेटगड़ी रकत वायु बिकारेक
रोग गुलाउ बेसी होवे हे।

अर्थात् जिस वर्ष आँधी तूफान सामान्य से अधिक होता है, उस वर्ष लोगों में पेट संबंधी बीमारियों की शिकायत अधिक होती है।

लीलावती

मानव जीवन की उत्क्रांति में गणित का अनन्य साधारण महत्व है। गिनने की प्रकिया से गणित का जन्म हुआ और आज गणित का विस्तार अनेक शाखाओं में होता हुआ हम देख रहे हैं। गणित के विभिन्न सिद्धांत, उदाहरण, समाधान, क्रिया, प्रक्रिया को समझाने वाला प्राचीन ग्रंथ है लीलावती।

भारत के प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कराचार्य द्वितीय ने 'लीलावती' ग्रंथ की रचना की है। भास्कराचार्य का जन्म शक संवत् 1036 में, सह्याद्री पर्वत के पास बसे विज्जडविड ग्राम में, शाण्डिल्य गोत्रीय ब्राह्मण कुल में हुआ था। उन्होंने स्वयं उनके द्वारा रचित गोलाध्याय के प्रश्नाध्याय में ऐसा अपने बारे में लिखा है। महाराष्ट्र के खानदेश में स्थित चालीस गाँव के पास एक उजड़े हुए गाँव के मंदिर में मिले शिलालेख में (पत्थर पर खुदाई करके लिखा लेख) भास्कराचार्य के बारे में उनके पूर्वज, पौत्र आदि के बारे में विस्तृत जानकारी इतिहासकारों को प्राप्त हुई है। भास्कराचार्य ने सिद्धांतशिरोमणि, लीलावती, बीजगणित, गोलाध्याय, गणिताध्याय,

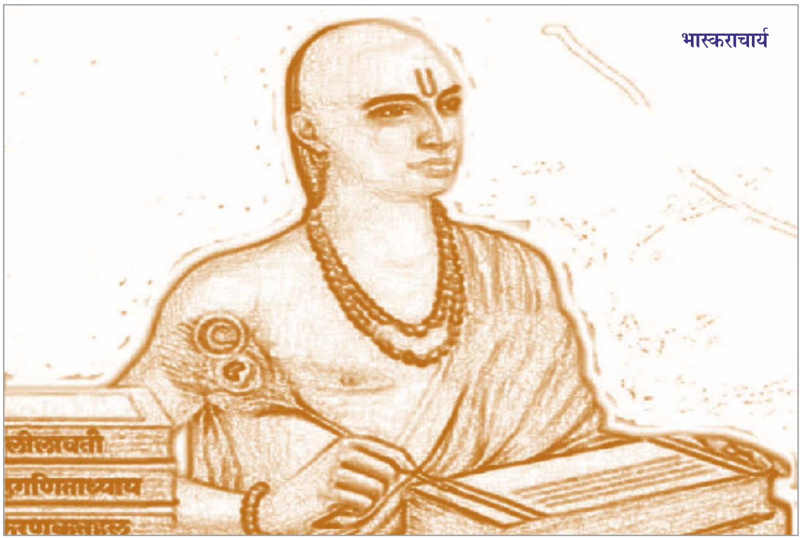

भास्कराचार्य

करणकुतूहल आदि गणित के ग्रंथों की रचना की है। यहाँ हम भास्कराचार्य लिखित 'लीलावती' ग्रंथ के बारे में जानने की कोशिश करेंगे। लीलावती ग्रंथ की रचना की कथा बड़ी ही रोचक है।

लीलावती ग्रंथ की रचना के बारे में दो-तीन मान्यताएँ हैं। एक मान्यतानुसार, लीलावती भास्कराचार्य जी के पुत्री का नाम है। लीलावती के जन्म के पश्चात जब भास्कराचार्य ने उसकी जन्मपत्री तैयार की तो जाना कि लीलावती के भविष्य में प्रखर वैधव्य दोष है, तो वे बड़े चिंतित हुए। वो सदैव अपनी बेटी के भविष्य के बारे में सोचते रहते थे। उन्होंने अपने गणितीय ज्ञान का उपयोग करके बड़े ही सोच-विचार से एक मुहूर्त निकाला। वो मुहूर्त बड़ा ही शुभ था। इस मुहूर्त पर विवाह करने से लीलावती का वैधव्य दोष टल जाएगा। ऐसा उन्हें पूर्ण विश्वास था। विवाह की तैयारी शुरू हुई। विवाह का मुहूर्त न चूके, इसलिए भास्कराचार्य ने पानी की घड़ी बनाई। पिताजी ने पानी की घड़ी कैसे बनाई है, यह देखने गई लीलावती और उसकी सहेलियों की नासमझी की वजह से लीलावती के वस्त्र का मणि घड़ी के पात्र में गिर गया और पानी का प्रवाह रुक गया। पानी का प्रवाह अनियमित होने के कारण घटिकापात्र का समय बदल गया। परिणामतः विवाह की शुभ घड़ी चूक गई और विवाह स्थगित हो गया। विधि के विधान से लीलावती बिना विवाह के रह गई। अन्य विधान के अनुसार लीलावती का विवाह तो संपन्न हुआ, लेकिन पति के गुजर जाने से वो विधवा का जीवन जीने के लिए बाध्य हुई। भास्कराचार्य की प्रिय पुत्री का जीवन दुखमय हो गया। अपनी पुत्री का दुख कम हो, उसका जीना सुलभ हो, किसी विषय में उसका मन लगा रहे, अपने ऊपर आए महासंकट की उसे थोड़े समय के लिए विस्मृति हो, ऐसा विचार कर भास्कराचार्य ने लीलावती को गणित के कूट प्रश्न पूछकर उसे गणित की शिक्षा देनी शुरू की। लीलावती को सिखाए गए गणित के नियमों का ग्रंथ है 'लीलावती'। कुछ अन्य मान्यतानुसार, लीलावती भास्कराचार्य

ध्रुव सचिन पटवर्धन

जन्म : 13 दिसंबर, 2004, सतारा, महाराष्ट्र।

शिक्षा : द्वितीय वर्ष वाणिज्य पदवी के छात्र।

प्रकाशन : प्रधानमंत्री युवा लेखक योजना के अंतर्गत 'वासुदेव विश्वनाथ आठल्ये–जीवन दर्शन' मराठी पुस्तक प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9021925347

ईमेल– dspkirtan@gmail.com

की पत्नी थी। कोई संतान न होने के कारण वह दुखी रहती थी। उसका दुख मिटाने के लिए और उसका नाम सदैव संसार में रहे, ऐसा विचार कर उन्होंने लिखे हुए गणित के ग्रंथ का नाम 'लीलावती' रखा। कोई लीलावती को भास्कराचार्य के गुरु की पुत्री बताता है। भास्कराचार्य लीलावती से विवाह करें, ऐसी गुरु की इच्छा थी, लेकिन गुरुपुत्री होने के कारण भास्कराचार्य को यह विवाह स्वीकार नहीं था। अब गुरुपुत्री अन्य किसी से विवाह नहीं कर सकती थी, अतः उसका नाम सदा सबको स्मरण रहे, इसलिए उन्होंने 'लीलावती' नाम का ग्रंथ लिखा।

इतिहासकारों को मिले शिलालेख में भास्कराचार्य के पौत्र का नाम मिला है, इसलिए उनकी कोई संतान नहीं थी, यह कहना व्यर्थ है। लीलावती ग्रंथ में 'ए बाले लीलावती' संबोधन मिलता है। इन कारणों से लीलावती भास्कराचार्य की पुत्री का ही नाम था, ऐसा मानना उचित होगा। 10-12 साल की वह कन्या भास्कराचार्य से गणित सीखने बैठी है। प्रश्न पूछ रही है। कूट प्रश्नों को समझकर उनके उत्तर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गणित के सिद्धांतों को समझ रही है। कितना रोचक प्रसंग है। चलिए, हम भी लीलावती के अंतरंग में उतरकर गणित की गहराइयों को समझने की कोशिश करते हैं, जिन्हें 909 साल पहले हमारे पूर्वजों ने जाना था।

"मधुमक्खियों के झुंड का पाँचवाँ हिस्सा रुक गया कदंब के फूल पर, सिलिंडा के फूल पर एक-तिहाई। इन दोनों संख्याओं के बीच के अंतर का तीन गुना क्रुतज के एक फूल के ऊपर से उड़ गया और एक मधुमक्खी अकेली हवा में रह गई खिले हुए चमेली की सुगंध से आकर्षित। मुझे बताओ, सुंदर लड़की झुंड में कितनी मधुमक्खियाँ थीं?" या "निर्मल कमलों के एक समूह के तृतीयांश, पंचमांश तथा षष्ठमांश से क्रमशः शिव, विष्णु और सूर्य की पूजा की, चतुर्थांश से पार्वती की और शेष छह कमलों से गुरु चरणों की पूजा की गई। ए बाले लीलावती, शीघ्र बता कि उस कमल समूह में कुल कितने फूल थे?" या "वानरों के समूह का आठवाँ भाग वन में लंघन कर रहा था। अन्य 12 पहाड़ी पर थे, चिल्ला रहे थे। कितने बंदर थे वहाँ उस समूह में?" या "रण में क्रुद्ध होकर अर्जुन ने कर्ण को मारने के लिए बाण चलाए। आधे बाणों से कर्ण के बाणों का निवारण करके, चलाए हुए सारे बाणों के वर्गमूल के चौगुने से उसके घोड़ों को मार डाला, तीन बाणों से क्रमशः छत्र, ध्वजा, धनुष का खंडन किया और एक बाण से उसका सिर काट डाला। ए लीलावती बता कि अर्जुन ने कुल कितने बाण चलाए?" ऐसे बड़े ही रोचक कूट प्रश्न लीलावती में मिलते हैं। 2000 वर्षों से पुराने भारतीय गणित में माने जाने वाली मूल क्रिया संकलन, व्यवकलन, गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल तथा गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल का उत्तर पाने के विभिन्न तरीकों और सूत्रों का, क्षेत्रमिति के विभिन्न त्रिकोणादि आकारों के क्षेत्रफलों के सूत्रों का, वर्ग (क्वाड्रटीक), घन (क्युबिक) आदि समीकरणों के प्रकारों का, भिन्न संख्या (फ्रक्शन), अनुपात और समानुपात (रेशिओ प्रपोर्शन), त्रैराशिक, ब्याज, प्रगति (प्रोग्रेशंस), क्रम परिवर्तन (पर्म्युटेशन), संयोजन (कॉम्बिनेशन) और विभाजन (पार्टीशन) आदि अनेक गणित के विषयों का स्पष्टीकरण लीलावती में आता है।

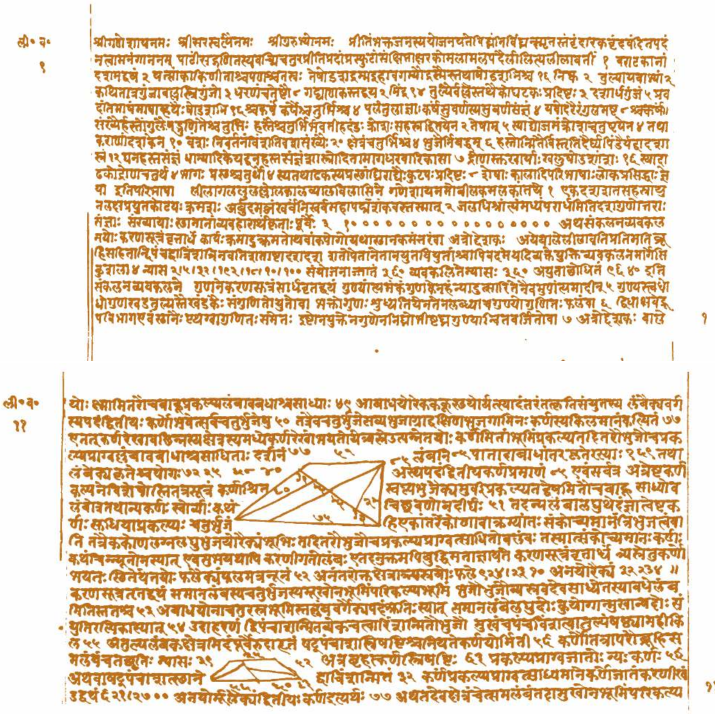

लीलावती पृष्ठ 1 व 2

संख्या की गणना के बारे में एक के आगे 18 शून्यों वाली संख्या का वर्णन लीलावती में किया गया है, जैसे—एक, दश, शत, सहस्त्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटी, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शंकु, जलधि, अन्त्य, मध्य और परार्ध। धन संख्या और ऋण संख्या (पॉजिटिव्स-निगेटिव्स) की कल्पना भी भास्कराचार्य जी को थी, ऐसा लीलावती के अध्ययन के बाद प्रतीत होता है। खहर यानी कि अनंत, बहुत बड़ी संख्या की परिकल्पना और जोड़ना-घटाना आदि क्रियाओं का अनंत पर होने वाला परिणाम इसके बारे में भी उल्लेख मिलता है। शून्य के बारे में भी जोड़ना, घटाना, गुणन आदि गणितीय क्रियाओं के परिणाम के नियमों को कहा गया है। किसी संख्या को शून्य से भाग देने से आने वाला उत्तर 'कुछ भी नहीं' (नॉट डिफाइंड) होता है। लेकिन शून्य को अत्यंत छोटी संख्या के रूप में देखा जा सकता है। ऐसी संख्या जिसका विलय शून्य में हो जाए, जैसे—0.000...अनंत शून्य... 000000001। अगर इस छोटी संख्या से हम किसी भी संख्या को

भाग दें तो उत्तर खहर यानी की अनंत ही आएगा। इस कारण कहा जा सकता है कि 'यदि अ, 0 है तब ब/अ, ∞ (अनंत)'। भास्कराचार्य ऐसे प्रथम गणितज्ञ हैं जिन्होंने परमाल्प संख्या यानी शून्य की कल्पना कर खहर यानी अनंत की इस धारणा को स्पष्ट किया है। इस विचार को आगे बढ़ाते हुए भास्कराचार्य अवकलन गणित (कैलक्युलस) के मूल सिद्धांतों तक पहुँच गए हैं, ऐसा स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस कारण से ही शायद लीलावती में दिए गए गणितों का उत्तर पाने के लिए आधुनिक गणित के कैलक्युलस के लिमिट, डेरिव्हेटिव, इंटिग्रेशन का उपयोग करना पड़ता है।

"विदेशी शासकों की नीतियों के कारण हम हमारी पुरानी परंपरा भूलने लगे। हमारी राजभाषा और ज्ञानभाषा भी बदलने लगी। अंग्रेजों ने तो अंग्रेजी को हमारी ज्ञानभाषा बना दिया। हमारे बच्चे संस्कृत छोड़ अंग्रेजी के पीछे दौड़ने लगे। अंग्रेजों की लिखी अंग्रेजी किताबों में दी हुई बातों को सच मानने लगे। न्यूटन, आर्किमिडीज, पाइथागोरस, युक्लिद, गैलीलियो, कॉपरनिकस आदि वैज्ञानिकों के नाम उनका कार्य हमें, हमारे बच्चों को मालूम है, लेकिन क्या हमें आर्यभट्ट, नागार्जुन, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, महावीर, लल्ल, श्रीपति, भास्कराचार्य आदि गणितज्ञों के नाम भी मालूम हैं?"

कोटिश्चतुष्टयं यत्र दोस्त्रयं तत्र का श्रुतिः।
कोटिदोःकर्णतः, कोटिश्रतिभ्यां च भुजं वद ॥

त्रिकोण की एक भुजा को 'भुज' कहें, तो दूसरी भुजा को 'कोटि' कहते हैं और दोनों को जोड़ने वाली भुजा को 'कर्ण' कहते हैं। अगर कोटि का प्रमाण 4 है, भुज का प्रमाण 3 है तो कर्ण का प्रमाण क्या होगा? और भुज-कर्ण जानकर कोटि का प्रमाण क्या होगा? कोटि-कर्ण जानकर भुज का प्रमाण क्या होगा? बताओ? इस प्रश्न का उत्तर पाइथागोरस का सिद्धांत ($\text{कर्ण}^2 = \text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2$) जाने बिना संभव है क्या?

लीलावती में पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत भी कहा है, वे कहते हैं—

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत् पततीव भाति समेसमन्तात क्व पतत्वियं खे ॥

पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति से भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। आकर्षण के कारण यह गिरती-सी लगती है। किंतु जब चारों ओर का सारा आकाश निराधार है, तो फिर यह पृथ्वी क्यों नहीं निराधार हो सकती? पृथ्वी के आकर्षण के बारे में भास्कराचार्य जानते थे। वैसे वे ये भी जानते थे कि पृथ्वी गोल है। लीलावती भास्कराचार्य जी से पूछती है, "पिताजी सब कहते हैं पृथ्वी सपाट है। मैं भी चारों तरफ देखती हूँ तो मुझे भी वो सपाट ही नजर आती है। फिर आप कैसे कहते हैं पृथ्वी गोल है?"

पुत्री का प्रश्न सुनकर वे बोले—

समो यतः स्यात्परिघेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥

"तुम अगर एक बड़े गोले को देखो और उसका सौवाँ भाग ही देखो तो वह तुम्हें सीधा लगेगा। इस प्रकार पृथ्वी एक विशाल गोला है। पृथ्वी के आकार में हम बहुत छोटे से हैं। हम पृथ्वी का छोटा हिस्सा ही देख सकते हैं। यही कारण है कि हमें पृथ्वी गोलाकार होते हुए भी सपाट दिखाई देती है।" पृथ्वी की छाया अर्थात ग्रहण के विषय में भी उन्होंने जानकारी दी है। छाया गणित में छाया व्यवहार, दो छायाओं में अंतर, दीपक और छाया की ऊँचाई आदि विषयों की विस्तृत चर्चा लीलावती में है।

गणित के अनेक रहस्यों को भास्कराचार्य ने लिखा है। भारत की पारंपरिक गणित के प्रतिनिधि के रूप में हम उन्हें जान सकते हैं। भास्कराचार्य ने उनके समय में प्रचलित 'लल्लसिद्धांत' ग्रंथ का अभ्यास किया था। ब्रह्मगुप्त के मत को जानकर उन्होंने लल्लसिद्धांत के कई मतों का खंडन भी किया था। भास्कराचार्य से पूर्व 1000 वर्ष पहले शून्य की खोज भारतीय गणितज्ञों ने की थी। अंक, दशमान पद्धति भी भारतीयों की अखिल विश्व को देन है। ई.स. 499 में आर्यभट्ट ने 'आर्यभटीय' ग्रंथ रचा। वहाँ से भारतीय गणित का स्वर्णकाल प्रारंभ हुआ और वह 12वीं शताब्दी में भास्कराचार्य जी के साथ समाप्त हुआ। भारत पर हुए विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण और गुलामी की वजह से भारतीय ज्ञान की ये अलौकिक परंपरा खंडित हुई। विदेशी शासकों की नीतियों के कारण हम हमारी पुरानी परंपरा भूलने लगे। हमारी राजभाषा और ज्ञानभाषा भी बदलने लगी। अंग्रेजों ने तो अंग्रेजी को हमारी ज्ञानभाषा बना दिया। हमारे बच्चे संस्कृत छोड़ अंग्रेजी के पीछे दौड़ने लगे। अंग्रेजों की लिखी अंग्रेजी किताबों में दी हुई बातों को सच मानने लगे। न्यूटन, आर्किमिडीज, पाइथागोरस, युक्लिद, गैलीलियो, कॉपरनिकस आदि वैज्ञानिकों के नाम उनका कार्य हमें, हमारे बच्चों को मालूम हैं, लेकिन क्या हमें आर्यभट्ट, नागार्जुन, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, महावीर, लल्ल, श्रीपति, भास्कराचार्य आदि गणितज्ञों के नाम भी मालूम हैं? हम हमारी परंपरा भूल गए, इसका बड़ा ही मूलभूत कारण है कि हम हमारी भाषा से कट गए हैं। जब तक हम संस्कृत नहीं सीखते, हमें हमारे पुराने ग्रंथ कैसे समझ में आएँगे और हमारी प्राचीन उज्ज्वल परंपराओं का पूर्ण रूप से बोध कैसे होगा? इसलिए शासन, स्वयंसेवी संस्था, संस्कृत पंडित, शिक्षक एवं विभिन्न शिक्षण संस्थाएँ मिलकर ऐसी शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करें, जिसके प्रभाव से बच्चे संस्कृत के विद्वान बनें। संस्कृत अपने देश की फिर से ज्ञानभाषा बने और फिर से कोई भास्कराचार्य भारत भूमि से सकल विश्व को गणित के नए सिद्धांत समझाए।

भारत के प्राचीन वैज्ञानिक

खासतौर पर नई पीढ़ी पाश्चात्य वैज्ञानिकों के बारे में काफी-कुछ जानती है, यह सहज भी है। लेकिन प्राचीन भारत के वैज्ञानिकों के बारे में सिर्फ उनका ही नहीं, बहुतेरों का ज्ञान अत्यंत सीमित है। अब शैक्षणिक पाठ्यक्रम में इनकी जानकारी शामिल की जा रही है। फिर भी असमंजस की कुछ स्थितियों को दूर करने का काम अभी बहुत बाकी है। सात समंदर पार की धरती पर इन प्राचीन भारत के वैज्ञानिकों के शोध और उपलब्धियों की जानकारी अब भी अपर्याप्त है। आज की डिजिटल पीढ़ी अपनी विभिन्न तकनीकी दक्षता की बदौलत आर्यभट्ट, चरक, सुश्रुत तथा भास्कराचार्य, कणाद व तत्कालीन चोटी के प्राचीन वैज्ञानिकों की जानकारी ले रही है। फिर भी देश के नीति निर्धारकों और बुर्जुआ पीढ़ी की जवाबदेही निश्चित रूप से बनती है कि प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकी, वैज्ञानिक और उनकी व्यापक उपलब्धियों का जनहितकारी ब्योरा व्यापक रूप से सर्वसुलभ कराने के बहुआयामी अभियान सभी माध्यमों से संचालित करे।

किशोर दिवसे

शिक्षा : एम.जे.एम.सी., एम.फिल.(पत्रकारिता)।

संप्रति : महाराष्ट्र न्यूज, सतारा, महाराष्ट्र में रेसीडेंट एडिटर, स्वतंत्र लेखन।

प्रकाशन : लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9827471743

ईमेल– kishorediwase0@gmail.com

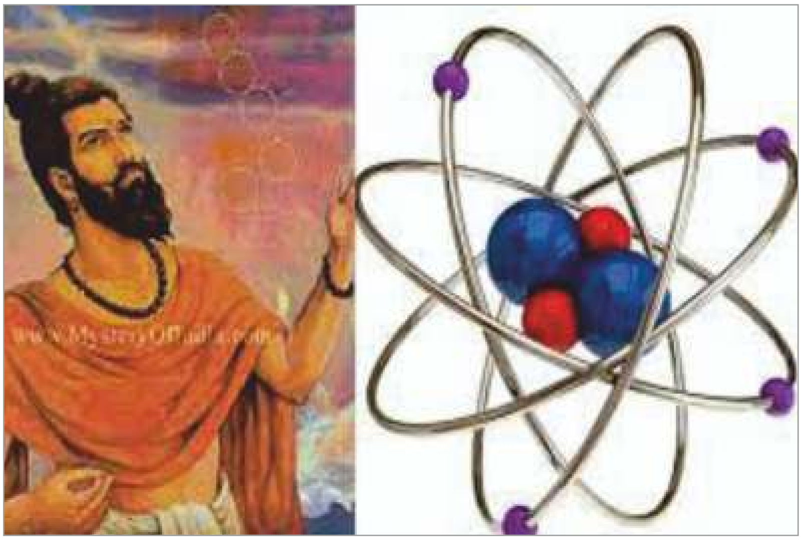

ऋषि कणाद

उत्तर आधुनिक काल के दौरान प्राचीन भारतीय विज्ञान को वैश्विक स्तर पर किस तरह स्थापित किया जाए, इस हेतु दुनियावी मानस में यह जानकारी प्रतिस्थापित करना आवश्यक है कि आखिर कौन थे हमारे प्राचीन भारत के वैज्ञानिक और उन्होंने विज्ञान के किस क्षेत्र में शोध किए हैं। आइए, हम सबसे पहले उन महान वैज्ञानिकों की उपलब्धियों से अवगत हों कि उन्होंने क्या किया और आज के युग में तत्कालीन उपलब्धियों की आवश्यकता कितनी अधिक है।

बौधायन और पाइथागोरस की प्रमेय कल्पना

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार, एक वैज्ञानिक थे बौधायन और अनुमानों के अनुसार शुल्ब-सूत्रों के रचनाकार बौधायन का जन्म ईसा पूर्व 800 के आस-पास हुआ था। वे गणित का प्रयोग धार्मिक अनुष्ठानों में होने वाले कर्मकांडों के लिए किया करते थे। इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने 'शुल्ब-सूत्रों' की रचना की थी। विशेष बात यह थी कि पाइथागोरस की लोकप्रिय प्रमेय की कल्पना उन्होंने पहले ही कर ली थी और उनके एक श्लोक में स्पष्ट दर्शाया गया है–

"दीर्घ चतुरश्रस्या क्षण्यारज्जुः पार्श्व मानी तिर्यक्मानी। च यत्पृथ्वभूते कुरु तस्ते दुमयं करोति॥"

बौधायन

अर्थात् दीर्घचर्तुश (आयत) में रज्जु (कर्ण) का चैत्र (वर्ग) पार्श्वमनि (आधार) तथा त्रियांग मनि (लंब) के वर्गों के योग के बराबर होता है। उन्होंने दो वर्गों के योग से एक नई व बड़ी वर्गाकृति बनाने की विधि भी समझाई थी। उन्होंने 'पाई' का मान भी निकाला था। बौधायन सूत्र के अंतर्गत निम्नलिखित छह ग्रंथ आते हैं—बौधायन श्रौतसूत्र, बौधायन कर्मान्तसूत्र, बौधायन द्वैधसूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र, बौधायन शुल्बसूत्र।

ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त (598-668) प्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ थे। मध्यकालीन यात्री अलबरूनी ने भी ब्रह्मगुप्त का उल्लेख किया है। वाग्भट आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ 'अष्टांगसंग्रह' तथा 'अष्टांगहृदयम्' के रचयिता थे। प्राचीन साहित्यकारों में यही ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपना परिचय स्पष्ट रूप में दिया है। 'अष्टांगसंग्रह' के अनुसार वाग्भट का जन्म सिंधु देश में हुआ था। इनके पितामह का नाम भी वाग्भट था। ये अवलोकितेश्वर के शिष्य थे। इनके पिता का नाम सिद्धगुप्त था। यह बौद्ध धर्म को मानने वाले थे। ह्वेनत्सांग का समय 675 और 685 शती ईसवी के आस-पास है। वाग्भट इससे पूर्व हुए थे। वाग्भट का समय पाँचवीं शती के लगभग है। ये बौद्ध थे, यह बात ग्रंथों से स्पष्ट है। चीनी यात्री इत्सिंग ने लिखा है कि उससे एक सौ वर्ष पूर्व एक व्यक्ति ने ऐसी संहिता बनाई, जिसमें आयुर्वेद के आठों अंगों का समावेश हो गया है। 'अष्टांगहृदयम्' का तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ था। आज भी अष्टांगहृदयम् ही ऐसा ग्रंथ है, जिसका जर्मन भाषा में भी अनुवाद हुआ है।

छत्तीसगढ़ से जुड़े थे वैज्ञानिक नागार्जुन

वर्तमान छत्तीसगढ़ से भी एक प्राचीन वैज्ञानिक नागार्जुन के होने का पता चलता है। शोधकर्ताओं को इस बारे में जानकारियाँ हासिल करनी चाहिए। बताया जाता है कि वे धातुकर्मी एवं रसशास्त्री (Alchemist) थे।

नागार्जुन

उनका जन्म 'महाकौशल' में हुआ था जिसकी राजधानी 'श्रीपुर' थी जिसे वर्तमान में 'छत्तीसगढ़' कहते हैं तथा श्रीपुर को 'सिरपुर' कहते हैं जो महासमुन्द जिले में आता है। इसके अलावा इतिहास में महायान संप्रदाय के दार्शनिक नागार्जुन तथा रसशास्त्री नागार्जुन में भी भ्रम की स्थिति बनी रहती है। महाराष्ट्र के नागलवाड़ी ग्राम में उनकी प्रयोगशाला होने के प्रमाण मिले हैं। कुछ प्रमाणों के अनुसार वे 'अमरता' की प्राप्ति की खोज करने में लगे हुए थे और उन्हें पारा तथा लोहे के निष्कर्षण का ज्ञान था। द्वितीयक साहित्य में भी रसशास्त्री नागार्जुन के बारे में बहुत ही भ्रम की स्थिति है। पहले माना जाता था कि 'रसरत्नाकर' नामक प्रसिद्ध रसशास्त्रीय ग्रंथ उनकी ही रचना है, किंतु 1984 के एक अध्ययन में पता चला कि रसरत्नाकर की पांडुलिपि में एक अन्य रचनाकार 'नित्यानन्द सिद्ध' का नाम आया है।

नागार्जुन का जन्म सन् 971 में गुजरात में सोमनाथ के निकट 'देहक' नामक किले में हुआ था। उनकी लिखित 'रसरत्नाकर' में रस (पारे के यौगिक) बनाने के प्रयोग दिए गए हैं। इसमें भारत में धातुकर्म और कीमियागरी के स्तर का सर्वेक्षण भी दिया गया था। इस पुस्तक में चाँदी, सोना, टिन और ताँबे की कच्ची धातु निकालने और उसे शुद्ध करने के तरीके भी बताए गए हैं। पारे से संजीवनी और अन्य पदार्थ बनाने के लिए नागार्जुन ने पशुओं और वनस्पति तत्वों तथा अम्ल और खनिजों का भी उपयोग किया। नागार्जुन ने 'उत्तर तंत्र' नामक पुस्तक भी लिखी जिसमें दवाइयाँ बनाने के तरीके दिए गए हैं। आयुर्वेद की एक पुस्तक 'आरोग्यमंजरी' भी लिखी। उनकी अन्य पुस्तकें हैं—'कक्षपूत तंत्र', 'योगसर' और 'योगाष्टक'।

सातवीं शताब्दी के गणितज्ञ भास्कर प्रथम

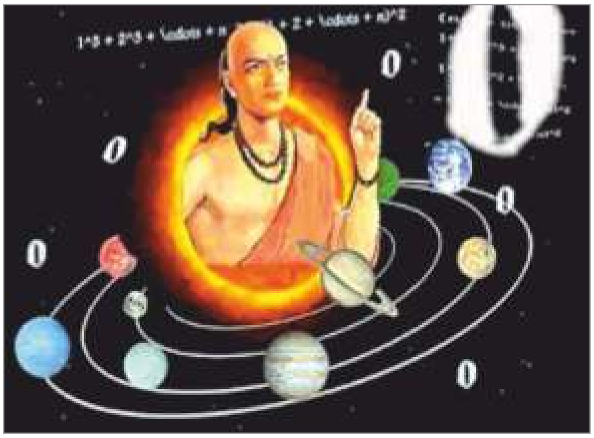

भास्कराचार्य

भास्कर प्रथम भारत के सातवीं शताब्दी के गणितज्ञ थे। आर्यभटीय पर उन्होंने सन् 629 में 'आर्यभटीय भाष्य' नामक टीका लिखी जो संस्कृत गद्य में लिखी गणित एवं खगोलशास्त्र की प्रथम पुस्तक है। उन्होंने 'महाभास्करीय' एवं 'लघुभास्करीय' नामक दो खगोलशास्त्रीय ग्रंथ भी लिखे। एक ग्रंथ में उल्लिखित निम्न संस्कृत श्लोक में वैज्ञानिक उपलब्धि का उल्लेख है—

"परे पूर्णमिति। उपरिष्टादेकं चतुरस्रकोष्ठं लिखित्वा तस्याधस्तात् उभयतोर्धनिष्क्रान्तं कोष्ठद्वयं लिखेत्।
तस्याप्यधस्तात् त्रयं तस्याप्यधस्तात् चतुष्टयं यावदभिमतं स्थानमिति मेरुप्रस्तारः।

तस्य प्रथमे कोष्ठे एकसंख्यां व्यवस्थाप्य लक्षणमिदं प्रवर्तयेत्।
तत्र परे कोष्ठे यत् वृत्तसंख्याजातं तत् पूर्वकोष्ठयोः पूर्णं निवेशयेत्।"

सांख्यशास्त्र के क्षेत्र में कपिल मुनि को प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है जिन्होंने सर्वप्रथम विकासवाद का प्रतिपादन किया और संसार को एक क्रम के रूप में देखा। 'कपिलस्मृति' उनका धर्मशास्त्र है। अंत में महर्षि कणाद (ई.पू. छठी-सातवीं सदी) का उल्लेख करना अनिवार्य होगा। महर्षि कणाद को परमाणु सिद्धांत के लिए जाना जाता है। कणाद का परमाणु सिद्धांत इस विचार पर आधारित था कि सभी पदार्थ छोटे, अविभाज्य कणों से बने होते हैं जिन्हें 'परमाणु' कहा जाता है। उनका नाम आज भी डॉल्टन के साथ जोड़ा जाता है। कणाद का कहना था—"परमाणु स्वतंत्र रूप से नहीं रह सकते, परमाणु का विनाश कर पाना भी संभव नहीं है।"

> **"भारत में अनुसंधान की स्थितियों में अब निरंतर बढ़ोतरी दर्ज की जा रही है। फिर भी सच्चाई यही है कि अब भी शोध के क्षेत्र में शोधार्थियों और अनुसंधानकर्ताओं को अगर बेहतरीन और विश्वस्तरीय सुविधाएँ प्रदान की जाएँ तब देश की प्रतिभा पलायन में अवश्य ही कुछ अंकुश लग सकता है। डिजिटल क्रांति के इस युग में शासकीय स्तर पर परंपरागत विज्ञान के अनुसंधान पर बढ़ावा देने के अलावा देश में अनुसंधान की मूल अधोसंरचना को अब और भी बेहतर बनाना होगा। परंपरागत विज्ञान के देशज विशेषज्ञों की प्रचलित पैथियों को किस तरह समय-सापेक्ष बनाया जाए, इस हेतु राष्ट्रीय कार्ययोजना विषय विशेषज्ञों के साथ बनाकर उसे निर्धारित समय में अमल में लाया जाना समीचीन होगा।"**

संस्कृत और आयुर्वेद के ग्रंथ

विज्ञान से जुड़े प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अनुवाद वर्षों से किया जाता रहा है और न सिर्फ भारत में वरन् विदेशों में भी ये अनूदित हो रहे हैं।

वराहमिहिर

इससे भारत के प्राचीन विज्ञान की परिकल्पनाओं और देशज विशेषज्ञता को भी वैश्विक ख्याति मिल रही है।

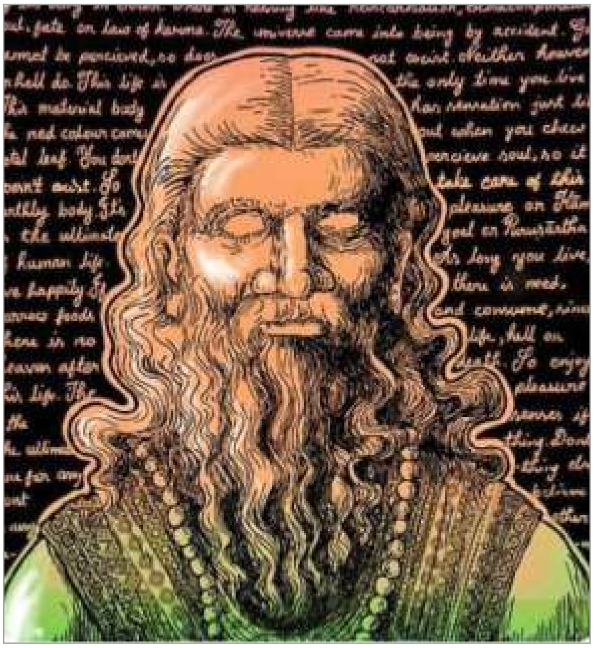

चारवाक

भारत में अनुसंधान की स्थिति और विकास की संभावनाएँ

भारत में अनुसंधान की स्थितियों में अब निरंतर बढ़ोतरी दर्ज की जा रही है। फिर भी सच्चाई यही है कि अब भी शोध के क्षेत्र में शोधार्थियों और अनुसंधानकर्ताओं को अगर बेहतरीन और विश्वस्तरीय सुविधाएँ प्रदान की जाएँ तब देश की प्रतिभा पलायन में अवश्य ही कुछ अंकुश लग सकता है। डिजिटल क्रांति के इस युग में शासकीय स्तर पर परंपरागत विज्ञान के अनुसंधान पर बढ़ावा देने के अलावा देश में अनुसंधान की मूल अधोसंरचना को अब और भी बेहतर बनाना होगा। परंपरागत विज्ञान के देशज विशेषज्ञों की प्रचलित पैथियों को किस तरह समय-सापेक्ष बनाया जाए, इस हेतु राष्ट्रीय कार्ययोजना विषय विशेषज्ञों के साथ बनाकर उसे निर्धारित समय में अमल में लाया जाना समीचीन होगा।

भारत के परंपरागत विज्ञान की मौलिकता अक्षुण्ण रखना भी अनिवार्य है। नीति निर्धारकों और नागरिकों की भी यह सम्यक जवाबदेही बनती है कि हमारे देश की प्राचीन वैज्ञानिक परंपराएँ सुदूर विदेशों में भी लोकप्रियता के शिखर पर रहें। फिर भी उत्तर आधुनिक विज्ञान को किसी भी स्तर पर अनदेखा करने की भी दुरूह स्थिति नहीं बनने देनी है जिसका खामियाज़ा हमें भुगतना पड़े। लिहाज़ा प्राचीन वैज्ञानिक परंपराओं में निरंतर समयोचित परिमार्जन कर उनका विकास कैसे किया जाए, इसके नए आयाम निरंतर सोचने होंगे।

हिमालय का एलोरा

भारतीय मंदिर स्थापत्य चिरकालीन भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न एवं महत्वपूर्ण अंग रहा है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक एवं पूर्व से लेकर पश्चिम तक विभिन्न राजवंशों ने मंदिर स्थापत्य एवं निर्माण कला से इस पुण्य धरती को समय-समय पर सिंचित किया है। भारतीय मंदिर स्थापत्य के अंतर्गत पत्थरों और ईंटों से निर्मित मंदिरों की चर्चा हमें सबसे ज्यादा देखने को मिलती है, किंतु कुछ मंदिर हमारे देश में ऐसे भी हैं जिनके लिए न पत्थर लाए गए और न ईंटें, इन्हें तो पूरा पर्वत तराश कर ही बना दिया गया। ऐसे मंदिर का वर्णन सामने आते ही हमें महाराष्ट्र स्थित प्रसिद्ध 'कैलाशनाथ मंदिर' का स्मरण आता है जिसे आठवीं सदी में राष्ट्रकूट राजवंश द्वारा निर्मित किया गया था। पर क्या आप जानते हैं कि एक एलोरा सुदूर हिमालय में भी स्थित है। धर्मशाला से लगभग 60 किलोमीटर दूर मसरूर गाँव के सुदूर शांत वातावरण के मध्य एक ऐसी जगह है जहाँ एक नौंवी शताब्दी में समग्र पहाड़ के अंदर उत्कीर्ण करके कुल 19 मंदिरों का निर्माण किया गया। इन मंदिरों को 'मसरूर शैल मंदिर परिसर' के नाम से जाना जाता है। हिमालय की ऊँचाइयों में अवस्थित इस मंदिर परिसर को कई विद्वानों द्वारा 'हिमालय का एलोरा' का भी दर्जा प्राप्त है।

मसरूर मंदिर परिसर का सर्वप्रथम उल्लेख सन् 1875 में मिलता है जो कि ज्यादा विस्तृत नहीं है। सन् 1913 में हेनरी ली शटलवर्थ ने इन मंदिरों का दौरा किया और साथ ही इन मंदिरों के बारे में अपनी टिप्पणियों को दर्ज किया। इसके बाद सबसे महत्वपूर्ण कार्य भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के के.एच. हरग्रेव्स का रहा जिन्होंने सन् 1915 में इस मंदिर परिसर का एक मानचित्र एवं एक विस्तृत लेख प्रकाशित किया जो कि आज तक व्यावहारिक एवं सटीक है।

शक्तिशाली गुर्जर प्रतिहार राजवंश ने पूरे उत्तर भारत में आठवीं से दसवीं शताब्दी तक शासन किया। प्रतिहार वंश के पतन के बाद किसी भी स्थानीय शासक के आदेश से नहीं बनाया गया था क्योंकि हिमाचल के तत्कालीन स्थानीय कारीगर के पास ऐसे जटिल निर्माण का न तो ज्ञान था और न ही विशेषज्ञता थी। यह मंदिर परिसर उत्तर भारतीय मंदिर की नागर शैली का निर्माण है, जैसा आप हिमाचल के अन्य मंदिर जैसे कि मसरूर, विश्वेश्वरनाथ, बजौरा और बैजनाथ आदि में भी देखते हैं। इतिहासकारों का स्पष्ट रूप से यह मानना है कि इन मंदिरों का निर्माण तत्कालीन स्थानीय कारीगरों द्वारा ही किया गया होगा, जिन्होंने मैदानी इलाकों में प्रतिहार मंदिर निर्माण शैली को सीख एवं अपना कर मसरूर के इन पहाड़ों में उस काल में दोहराया होगा। मसरूर मंदिर परिसर के मंदिरों की निर्माण शैली प्रारंभिक प्रतिहार वंशीय मंदिरों से मेल खाती है जिसके बाद शंका का कोई स्थान बिलकुल भी शेष नहीं रह जाता है ।

मसरूर मंदिर परिसर; साभार : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण

दसवीं शताब्दी के बाद तक पश्चिमी हिमालयी राज्यों के बीच गठजोड़ कई बार बने और भंग हुए। कुछ इतिहासकार मसरूर मंदिर परिसर के निर्माण का श्रेय कटोच राजवंश को देते हैं, किंतु यह सर्वदा ज्ञात तथ्य है कि कटोच शासनकाल का समय मंदिर के निर्माण काल के साथ बिलकुल भी मेल नहीं खाता। विद्वानों का यह भी मानना है कि इस मंदिर परिसर को

मसरूर मंदिर परिसर का निर्माण बलुआ पत्थर की चट्टान के दो समानांतर भाग को उत्कीर्ण करके एक अखंड परिसर के रूप में किया गया है। इस समग्र मंदिर परिसर की लंबाई लगभग 170 फुट है और इसकी चौड़ाई लगभग 120 फुट है। परिसर के पार्श्व की ओर एक समय में कुछ छोटे मंदिरों की शृंखला रही होगी जो कि वर्तमान में लगभग ढह चुकी है।

सुशांत भारती

जन्म : 13 जुलाई, 1993

संप्रति : संरक्षण स्थपति एवं शोधकर्ता के रूप में दिल्ली में कार्यरत।

शिक्षा : वास्तुकला में स्नातक।

मंदिर स्थापत्य, भारतीय मूर्तिशास्त्र, ब्रज की सांस्कृतिक परंपरा आदि विषयों में उनकी विशेष रुचि है। वर्तमान में ब्रजस्थ मंदिर स्थापत्य के शोध एवं प्रलेखन कार्य में संलग्न हैं।

संपर्क : मोबाइल— 7982622654

ईमेल— sushantvinayak@gmail.com

इसके बावजूद मुख्य मंदिर जो कि पूर्व की ओर मुख किए हुए है और अन्य छोटे मंदिरों से घिरा हुआ है, वह आज भी इस मंदिर परिसर के गौरवशाली इतिहास का बखान करता हुआ तटस्थ खड़ा है।

मंदिर परिसर के मध्य में अवस्थित मुख्य मंदिर के शीर्ष पर लतिन नागर शैली का शिखर विराजमान है। इस मंदिर का मुख मंडप अब पूरी तरह ढह चुका है। वर्तमान में केवल चार बड़े खंबे देखे जा सकते हैं जिन पर कभी एक विशालकाय मंडप खड़ा रहा होगा। विशेषज्ञ इस परिसर की क्षति का सबसे बड़ा कारण भूकंप को मानते हैं जो कि इस अंचल में कई बार अपनी उपस्थिति समय-समय पर दर्ज करा चुका है। मुख्य मंदिर के भीतर चतुर्मुख शिवलिंग विराजमान है। मुख्य मंदिर के शिखर की समान ऊँचाई पर दो मंदिर अवस्थित हैं जो पूर्व की ओर हैं। मुख्य शिखर के चारों दिशाओं में निकले हुई अत्यधिक उत्कीर्ण शुकनासिका को कुछ खंडित अवस्था में देखा जा सकता है। मंदिर का द्वार भारतीय हिमालय क्षेत्र में पाया जाने वाला सबसे बड़ा प्राचीन द्वार है। लुप्त मंडप के चार विशाल स्तंभों के वर्गाकार आधार विस्तृत रूप से डिजाइनों के साथ उत्कीर्ण किए हुए हैं।

जैसा कि पहले बताया गया है, इस मंदिर परिसर में कुल 19 मंदिर हैं जिसमें मुख्य मंदिर को हटाकर कुल 16 पार्श्व मंदिर देखे जा सकते हैं। कुछ ऐसे भी शैल मंदिर हैं जो कि पर्वत का भाग न होकर अलग से उत्कीर्ण किए गए हैं। शिवलिंग के साथ ही वर्तमान में गर्भगृह के भीतर नवीन शैली की राम, लक्ष्मण और सीता की काले पत्थर से निर्मित विग्रह विराजमान है जिनकी नियमित रूप से पूजा की जाती है। यह विग्रह बाद में स्थानीय लोगों ने मुख्य वास्तविक प्रतिहार कालीन विष्णु विग्रह के अभाव में विराजमान किए थे।

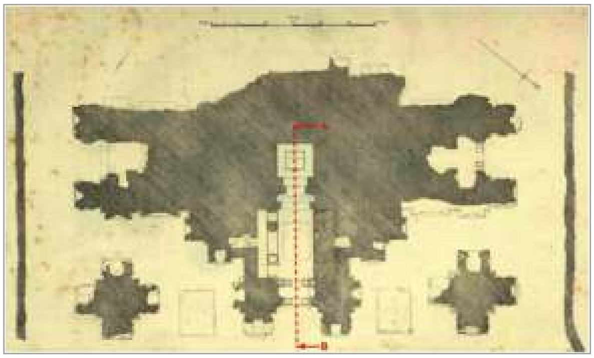

के.एच. हरग्रेव्स द्वारा निर्मित मसरूर मंदिर परिसर का मानचित्र
साभार : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण

मसरूर मंदिर परिसर उत्तर-पूर्व की ओर धौलाधार पर्वत शृंखला को देखते हुए बनाया गया है। मंदिर का गर्भगृह चौकोर है। गणेश, कार्तिकेय और शिव को मंदिरों के द्वार के ललाट पर लघु रूप में दर्शाया गया है। मंदिर की अंतराल के छत पर एक बड़ा कमल का फूल उत्कीर्ण है, जो छोटे-छोटे कमल एवं हीरों से सुसज्जित है। प्रत्येक शिखर के ऊपर तीन बढ़ते से घटते क्रम में बृहद आकृतियाँ बनी हुई हैं जो कि सिकुड़ते हुए शिखर के क्षितिज तक चढ़ते हुए प्रतीत होते हैं। प्रत्येक आकृति में एक मानवीय चेहरा उत्कीर्ण है। दक्षिणी दिशा की ओर स्वतंत्र रूप से खड़ा मंदिर परिसर का बृहद रूप से अलंकृत मंदिर है। इस मंदिर में कई हिंदू देवी एवं देवता की छवियाँ उत्कीर्ण हैं।

मुख्य मंदिर के चारों कोनों पर उत्कीर्ण किए गए मंदिर विस्तृत रूप से चित्रित एवं नक्काशीदार सिरदल और द्वार से सुशोभित हैं, परंतु अंदर से एकदम अपूर्ण हैं। संरक्षण की कमी, राजनीतिक परिस्थितियाँ, पलायन आदि इस अधूरे निर्माण के पीछे के कारण हो सकते हैं। यह निश्चित है कि इस परिसर को एक विशाल और शाश्वत स्मारक बनाने के लक्ष्य से शुरू किया गया था, परंतु किसी कारणवश इस महत्वाकांक्षी परियोजना को बीच में ही छोड़ दिया गया।

मसरूर मंदिर परिसर के मुख्य मंदिर के बायीं ओर घुमावदार सीढ़ी है जो कि सीधा मंदिरों की छत की ओर जाती है जिसके अलंकृत नक्काशीदार प्रवेश द्वार हैं। मंदिर की दीवारें खड़ी हैं और शिखर, जो उनके ऊपर बैठता है, एक कोण पर अंदर की ओर खुदा हुआ है। इसकी मूल ऊँचाई संभवतः 80 फीट के आस-पास थी। सुकनासा, एक गोलाकार पदक और त्रिमूर्ति या शिव के तीन-मुकुट वाले सिर, भद्रा या केंद्र खंड में स्थित हैं। उत्तर-कोने के तीर्थस्थल में भद्रमुख, जो अपेक्षाकृत अक्षुण्ण बच गया है, को उच्च राहत में उकेरा गया है और त्रिमूर्ति के तीन चेहरे बाहर किए जा सकते हैं। शिव का एक चेहरा सीधे आगे दिख रहा है, जबकि अन्य दो तरफ मुड़े हुए हैं। मुख्य मंदिर के बगल में दो छत वाले मंदिर पूरी तरह कार्यात्मक मंदिर हैं, हालाँकि उनमें एक कक्ष की कमी है। मसरूर मंदिर परिसर में इसके अलावा शिव, सप्त मातृका, महिसासुरमर्दिनी, कुबेर, सूर्य, कार्तिकेय, वरुण, अर्धनारीश्वर, हरिहर आदि की उत्कीर्ण की हुई छवियाँ भी विराजमान हैं।

मसरूर मंदिर परिसर के मुख्य मंदिर का प्रवेश द्वार विशेष रूप से अलंकृत एक सुंदर द्वार का जीवंत एवं सुंदर उदाहरण है जिसमें विष्णु, इंद्र, गणेश, स्कंद और दुर्गा आदि से घिरे ललटबिंब के बीच में शिव स्थित हैं। शिव के पास पाँच गणों द्वारा समर्थित एक मुकुट है। कुछ मूर्तियों को नियति ने अपेक्षाकृत रूप से अक्षुण्ण बना दिया है, जबकि अन्य को लगभग पूरी तरह से क्षरण द्वारा अस्पष्ट कर दिया गया है। अब उन मूर्तियों को केवल आंशिक रूप से ही देखा एवं समझा जा सकता है। मसरूर मंदिर परिसर की बलुआ चट्टानें पूरी तरह से सपाट नहीं हैं जिसके कारण उस समय के कारीगरों को संभवतः मूर्तियाँ उत्कीर्ण करने में समस्या आई हो। साथ ही यह बात वैज्ञानिक रूप से एकदम स्पष्ट है कि बलुआ पत्थर में क्षरण काफी तेजी से होता है जिसके कारण आज मसरूर मंदिर परिसर की यह दशा है।

कुछ भी हो, इतना तो बिलकुल स्पष्ट है कि मसरूर भारतीय निर्माण कौशल का एक मुकुटमणि है जिसने उस काल में स्थानीय निवासियों को निश्चित रूप से चकित कर दिया होगा। यह मंदिर परिसर एवं इसकी संरचना उत्तर हिमालय में अपने आप में इकलौता उदाहरण है जिसके कारण इसकी महत्ता और बढ़ जाती है। आज के समय में जब भारतीय संस्कृति के ध्वजवाहक केवल बातों पर सीमित हैं, ऐसे में महानगरीय सुचारु व्यवस्था से दूर मसरूर मंदिर परिसर जैसी धरोहर के प्रति शासन एवं प्रशासन का ध्यान खींचना अत्यंत जरूरी हो जाता है।

पारंपरिक ज्ञान

वृक्षायुर्वेद

–पंकज चतुर्वेदी

कुछ साल पहले थियोसोफिकल सोसायटी, चेन्नई में कोई पचास से अधिक आम के पेड़ रोगग्रस्त हो गए थे। आधुनिक कृषि-डॉक्टरों को कुछ समझ नहीं आ रहा था। तभी समय की आँधी में कहीं गुम हो गया सदियों पुराना 'वृक्षायुर्वेद' का ज्ञान काम आया। 'सेंटर फॉर इंडियन नॉलेज सिस्टम' (सीआईकेएस) की देख-रेख में नीम और कुछ दूसरी जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल किया गया। देखते-ही-देखते बीमार पेड़ों में एक बार फिर हरियाली छा गई। ठीक इसी तरह चेन्नई के 'स्टेला मेरी कॉलेज' में वनस्पति विज्ञान के छात्रों ने जब गुलमेंहदी के पेड़ में 'वृक्षायुर्वेद' में सुझाए गए नुस्खों का प्रयोग किया तो पता चला कि पेड़ में न सिर्फ फूलों के घने गुच्छे लगे, बल्कि उनका आकार भी पहले से बहुत बड़ा था।

'वृक्षायुर्वेद' के रचयिता सुरपाल कोई एक हजार साल पहले मध्य भारत के शासक भीमपाल के राजदरबारी थे। वे वैद्य के साथ-साथ अच्छे कवि भी थे, तभी चिकित्सा सरीखे गूढ़ विषय पर लिखे गए उनके ग्रंथ 'वृक्षायुर्वेद' को समझने में आम ग्रामीण को भी कोई दिक्कत नहीं आती है। 'वृक्षायुर्वेद' एक संस्कृत ग्रंथ है जिसमें वृक्षों के स्वास्थ्यपूर्ण विकास एवं पर्यावरण की सुरक्षा से संबंधित चिंतन है। यह सुरपाल की रचना मानी जाती है जिनके बारे में बहुत कम ज्ञात है। सन् 1996 में डॉ. वाय.एल. नेने (एशियन एग्रो-हिस्ट्री फाउंडेशन, भारत) ने ब्रिटेन के 'बोल्डियन पुस्तकालय' (ऑक्सफोर्ड) से इसकी पांडुलिपि प्राप्त की। डॉ. नलिनी साधले ने इसका अनुवाद अंग्रेजी में किया। वृक्षायुर्वेद की पांडुलिपि देवनागरी के प्राचीन रूप वाली लिपि में लिखी गई है। 30 पृष्ठों में 325 परस्पर सुगठित श्लोक हैं जिनमें अन्य बातों के अलावा 170 पौधों की विशेषताएँ दी गई हैं।

इस ग्रंथ में कई ऐसे नुस्खे हैं जो कि बगैर किसी प्रयोगशाला के, खुले में, अपने खेतों, बगीचों, आंगन के पौधों का इलाज जड़ी-बूटियों और मसालों के द्वारा करना बताते हैं। इस पुस्तक में वनस्पति विज्ञान, कृषि विज्ञान से संबंधित बहुत सारी चीजों पर बड़े सार्थक लेख दिए गए हैं, जैसे—पौधरोपण के पूर्व बीजों की प्राप्ति, परिरक्षण तथा उपचार, पौधा रोपने के लिए जमीन तैयार करना, मिट्टी तैयार करना, मिट्टी का चयन, सिंचाई पद्धति, पोषण तथा उर्वरक, पौधों के रोग—आंतरिक एवं बाहरी, लोगों से पौध संरक्षण, उपवन से पौध संरक्षण, उपवन का अभिविन्यास, भूजल संरक्षण, संरक्षण एवं भूजल

का उपयोग, फलों को बीज रहित करना, फलों का स्वाद बदलना, फलों का रंग बदलना, रंगीन कपास का उत्पादन, एक फल में दूसरे फल की कलम लगाना, बेर के पेड़ में अंगूर के गुच्छे जैसे फल लगाना, देसी नीला, हरा, सिंदूरी कपास तैयार करना, अफलन वाले पौधे में आठ दिन के अंदर फल उतरवाना। इसमें दूध-दही-शहद के त्रिफला से अनाज के पोषक तत्व बदलना, केवल धूप और नवेद से 40 मन (16 कुंतल) वजन का कद्दू पैदा करना, जैसे चमत्कारी प्रयोग भी हैं। कुछ हवन सामग्री से मधुमक्खियों को आकर्षित कर अपने खेत में छत्ता लगवाना, देसी विधि से बीही (अमरूद), संतरा, केला, मौसमी को मीठा करना, नींबू को खट्टा करना, वैदिक विधि से फलों का गिरना रोकना, पकना रोकना, अलग-अलग तरीके के खरपतवारों का देसी नुस्खों से अंकुरण रोकना और न जाने ऐसे कितने हजारों नुस्खे इस ग्रंथ में संजोए हैं। ये सभी नैसर्गिक और प्राकृतिक तरीके हैं, जो कि जैविक खेती करने वाले किसान के लिए कम लागत में चमत्कारी प्रभाव देते हैं। इस ग्रंथ में हजार साल पहले बता दिया गया था कि किस तरह खेत की योजना बनाई जाए, साथ ही विभिन्न वृक्षों का महत्व, बीजों का परीक्षण और उपचार, भूजल जैसे विषयों पर ऐसा ज्ञान इसमें है, जो पर्यावरण मित्र के साथ-साथ अल्प व्यय का है।

वृक्षायुर्वेद की तरल खाद-कुनापा जल का प्रयोग तो असम व दार्जिलिंग के चाय बागानों व कर्नाटक के काफी बागानों में खूब होता है।

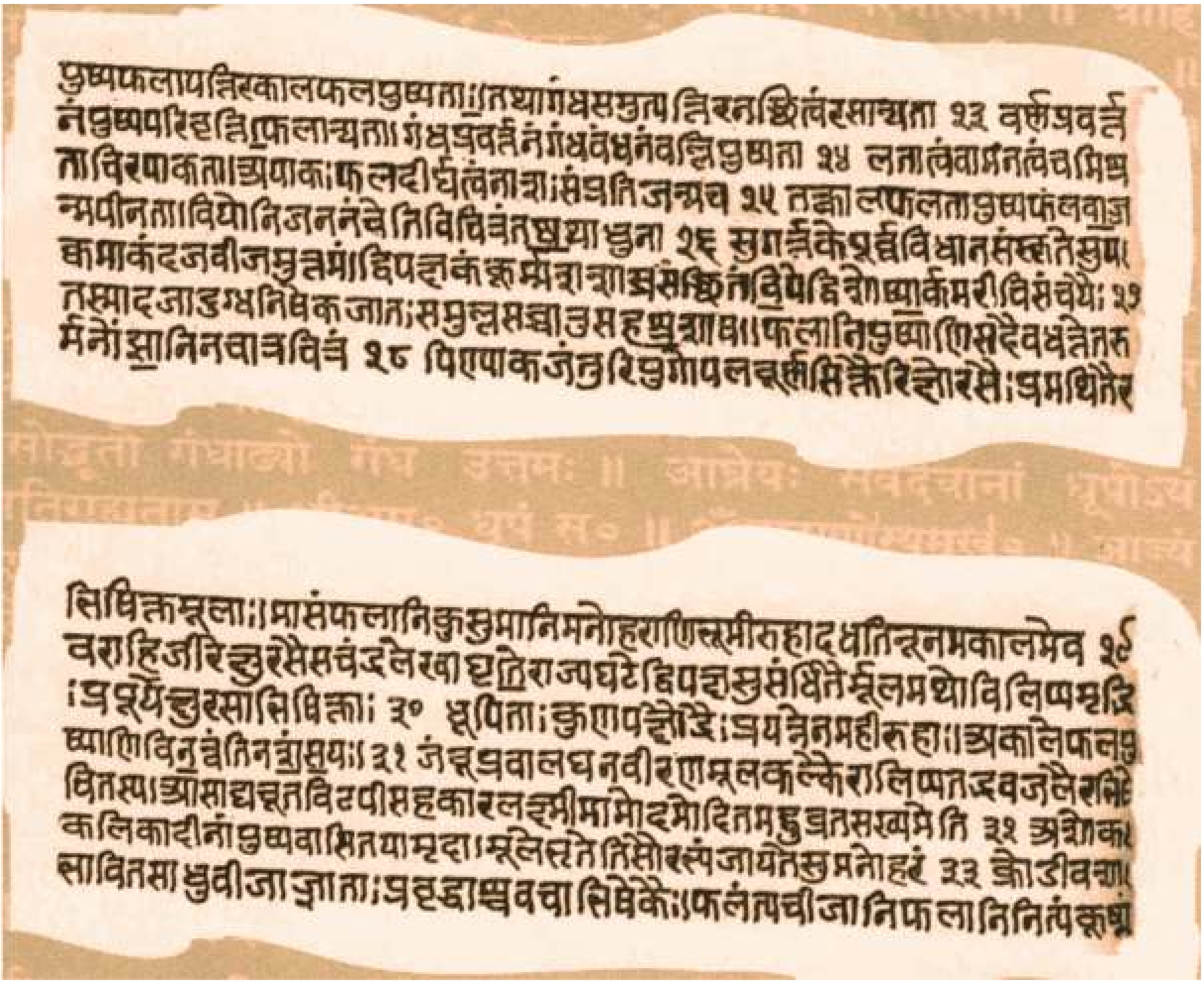

सुरपाल कहते हैं कि पेड़ को हर समय तरल खाद दी जाए जो जल्दी असर करती है, कम लगती है और किफायती होती है। कुनापा जल को मरी मछली, मवेशियों के गोबर और कुछ खरपतवार को मिलाकर तैयार किया जाता है और इसे छिड़कने के बाद यह खाद व कीटनाशक दोनों का काम करता है।

वृक्षायुर्वेद में एक श्लोक कहता है कि जवानी, आकर्षक व्यक्तित्व, खूबसूरत स्त्री, बुद्धिमान मित्र, कर्णप्रिय संगीत, सभी कुछ एक राजा के लिए अर्थहीन हैं, यदि उसके यहाँ चित्ताकर्षक बगीचे नहीं हैं। सुरपाल के कई नुस्खे अजीब हैं, जैसे—अशोक के पेड़ को यदि कोई महिला पैर से ठोकर मारे तो वह अच्छी तरह फलता-फूलता है या यदि कोई सुंदर महिला मकरंद के पेड़ को नाखुनों से नोच ले तो वह कलियों से लद जाता है। सुरपाल के कई नुस्खे आसानी से उपलब्ध जड़ी-बूटियों पर आधारित हैं। महाराष्ट्र में धोबी कपड़े पर निशान लगाने के लिए जिस जड़ी का इस्तेमाल करते हैं, उसे वृक्षायुर्वेद में असरदार कीटनाशक निरूपित किया गया है। 'भल्लाटका' यानी 'सेमीकार्पस एनाकार्डियम' का छोटा-सा टुकड़ा यदि भंडार गृह में रख दिया जाए तो अनाज में कीड़े नहीं लगते हैं और अब इस साधारण-सी जड़ी के उपयोग से कैंसर सरीखी बीमारियों के इलाज की संभावनाओं पर शोध चल रहे हैं।

पंचामृत यानी गाय के पाँच उत्पाद—दूध, दही, घी, गोबर और गौमूत्र के उपयोग से पेड़-पौधों के कई रोग जड़ से दूर किए जा सकते हैं। 'वृक्षायुर्वेद' में दी गई इस सलाह को वैज्ञानिक रामचंद्र रेड्डी और ए.एल. सिद्धारमैया ने आजमाया। टमाटर के मुरझाने और केले के पनामा रोग में पंचामृत की सस्ती दवा ने सटीक असर किया। इस परीक्षण के लिए टमाटर की पूसा-रूबी किस्म को लिया गया। सुरपाल के सुझाए गए नुस्खे में थोड़ा-सा संशोधन कर उसमें यीस्ट और नमक भी मिला दिया गया। दो प्रतिशत घी, पाँच प्रतिशत दही और दूध, 48 फीसदी ताजा गोबर, 40 प्रतिशत गौ मूत्र के साथ-साथ 0.25 ग्राम नमक और इतना ही यीस्ट मिलाया गया। ठीक यही फार्मूला केले के पेड़ के साथ भी आजमाया गया, जो कारगर रहा।

सीआईकेएस में बीते कई सालों से वृक्षायुर्वेद और ऐसे ही पुराने ग्रंथों पर शोध चल रहे हैं। यहाँ बीजों के संकलन, चयन और उन्हें सहेज कर रखने से लेकर पौधों को रोपने, सिंचाई, बीमारियों से मुक्ति आदि की सरल पारंपरिक प्रक्रियाओं को लोकप्रिय बनाने के लिए

आधुनिक डिग्रियों से लैस कई वैज्ञानिक प्रयासरत हैं। पशु-आयुर्वेद, सारंगधर कृत 'उपवन विनोद' और वराहमिहिर की 'वृहत्त संहिता' में सुझाए गए चमत्कारी नुस्खों पर भी यहाँ काम चल रहा है। सीआईकेएस में वैज्ञानिक डॉ. के. विजयलक्ष्मी अपने बचपन का एक अनुभव बताती हैं कि उनके घर पर लौकी की एक बेल में फूल तो खूब लगते थे, लेकिन फल बनने से पहले झड़ जाते थे। एक बूढ़े माली ने उस पौधे के पास एक गड्ढा खोदकर उसमें हींग का टुकड़ा दबा दिया। दो हफ्ते में ही फूल झड़ना बंद हो गए और उस साल सौ से अधिक फल लगे। डॉ. विजयलक्ष्मी ने इस घटना के 15 साल बाद जब वृक्षायुर्वेद का अध्ययन किया तो पाया कि हींग मूलरूप से 'वात दोष' के निराकरण में प्रयुक्त होती है। फूल से फल बनने की प्रक्रिया में

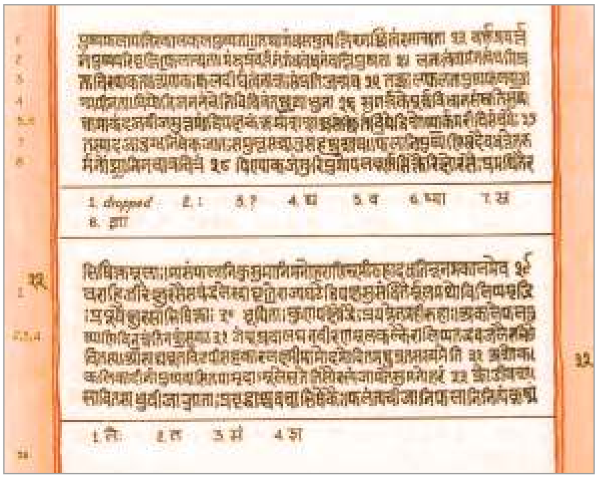

इसी प्रकार मवेशियों की सामान्य बीमारियों के घरेलू इलाज के लिए रचित 'पशु-आयुर्वेद' भी इन दिनों खासा लोकप्रिय हो रहा है। इस प्राचीन ग्रंथ में पशुओं के जानलेवा रोग खूनी दस्तों की दवा 'कुटजा' को बताया गया है। 'होलोरेना एंटीडायसेंट्रीका' के वैज्ञानिक नाम वाली यह जड़ी बड़ी सहजता से गाँव-खेतों में मिल जाती है। आँव-दस्त में यह बूटी इतनी सुरक्षित है कि इसे नवजात शिशु को भी दिया जा सकता है। 'पशु-आयुर्वेद' के ऐसे ही जादुई नुस्खों पर दो कंपनियों ने दवाइयाँ बना कर बेचना शुरू कर दिया है।

खेती-किसानी के ऐसे ही कई हैरत-अंगेज नुस्खे भारत के गाँव-गाँव में पुराने, बेकार या महज भावनात्मक साहित्य के रूप में

मध्य प्रदेश का निमाड़ अंचल मिर्ची की खेती के लिए मशहूर है। पिछले साल वहाँ कई हजार एकड़ की फसल कीड़ा लगने के कारण नष्ट हुई, लेकिन कुछ खेत ऐसे भी थे, जहाँ बेहतरीन फसल उगी। पता चला कि उन खेतों के किसानों ने किसी तरह का रासायनिक खाद या कीटनाशक का इस्तेमाल नहीं किया था। वे खेतों में दूध, हल्दी और गुड़ का छिड़काव करते थे। हर सुबह खेतों के बीच खड़े होकर घंटी बजाते थे। राज्य के कृषि विभाग के अफसर भी वहाँ गए और पुष्टि हुई कि किसानों की देशज, पारंपरिक तरकीब काम कर रही है। एक बात और कि फसल की मात्रा भी कम नहीं हुई। भारतीय कृषि के पारंपरिक ज्ञान में कई ऐसे नुस्खे हैं जिन्हें अपनाने से न केवल खेती की लागत कम होती है, बल्कि फसल मात्रा व गुणवत्ता में भी बेहतर होती है। मध्य प्रदेश के ही मंडला जिले के आदिवासी गाँवों ने आम के बाग में नारियल की चटनी का इस्तेमाल कर अपनी पैदावार तीस प्रतिशत तक बढ़ा ली। पाँच नारियल की चटनी को एक बोतल पानी में पंद्रह दिन रखा गया। बोतल का पानी काला हो गया और उसमें फफूँद आ गई। इस पानी को 15 लीटर सामान्य पानी में मिलाकर आम के पेड़ में बौर आते ही छिड़काव किया जाता है। इससे कीड़े तो मरते ही हैं, बौर झड़ने बंद हो जाते हैं व पैदावार अच्छी होती है। डुगराई गाँव की आदिवासी महिला गोबर के उपले को 12 घंटे पानी में भिगो कर रखती हैं और फिर इस मिश्रण को 15 लीटर पानी में मिलाकर पेड़ों पर छिड़क कर पूरी तरह ऑर्गेनिक खेती करती हैं। ऐसे कई स्थानीय नुस्खे भारत के लोक समाज में उपलब्ध हैं। इनसे पैदा उत्पाद जहरीले नहीं होते और यह पूरी प्रक्रिया पर्यावरण मित्र व कम लागत की होती है। विडंबना है कि हरित क्रांति के नारे में फँस कर हमारा किसान रासायनिक दवा और खाद के फेर में फँस गया और इसी की परिणति है कि आज किसान कर्ज में दब कर हताश-परेशान है।

'वात दोष' का मुख्य योगदान होता है। इसकी मात्रा में थोड़ा भी असंतुलन होने पर फूल झड़ने लगते हैं। सनद रहे कि हींग भारतीय रसोई का आम मसाला है और इसका इस्तेमाल मानव शरीर में वात दोष निवारण में होता है। वृक्षायुर्वेद का दावा है कि मानव शरीर की भाँति पेड़-पौधों में भी वात, पित्त और कफ के लक्षण होते हैं और इनमें गड़बड़ होने पर वनस्पति बीमार हो जाती है।

बेकार पड़े हुए हैं। ये हमारे समृद्ध हरित अतीत का प्रमाण तो हैं ही, प्रासंगिक और कारगर भी हैं। अब यह बात सारी दुनिया मान रही है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान के इस्तेमाल से कृषि की लागत घटाई जा सकती है। यह खेती का सुरक्षित तरीका भी है और इससे उत्पादन भी बढ़ेगा। साथ-ही-साथ इन तरीकों से जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग जैसे संकटों से सहजता से निबटा जा सकता है।

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृत	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
फूल	**पुष्पम्**	**फुल्ल**	**फूल**	**पोश**	**गुलु फूलु**	**फुलें**	**फूल**	**फूल**	**फूल**	**फुल**
कचनार	कोविदारः	कचनार	कचनार	कचनार	कचनार	कंचनाचें फूल आपटयाचे फूल	आपटो	कांचनार	कोइरालो	काञ्चन
कनेर	कर्णिकारः	कनेर	कनेर	कनेर	कनेरू	कण्हेर	कणेर	करेण	करबिर, कनेर	कल्केफुल, करबी
कमल	कमलम्	कमल	कंवल, नीलोफर	पंपोश	कंवलु, कमलु	कमळ	कमळ	कमळ	कमल	पद्म, कमल
केतकी	केतकम्	केतकी	काजी, केतकी, केवड़ा	केतकी	केतिकी	केतकी	केवडो, केतकी	केतकी	केतकी, केतक	केतकी, केया
केवड़ा	केतकम्	किओडा, केउडा	केवड़ा	क्येवड्	केविड़ो	केवडा	कवातो, हातो	केवडो	केवडा	केओडा, केया
गुलाब	पाटलम्	गुलाब	गुलाब	ग्वलाब	गुलाबु	गुलाब	गुलाब	गुलाब	गुलाफ	गोलाप
गेंदा	गन्धपुष्पम्	गेंदा	गेंदा	जाफुर	गेंडो	झेंडू	गोंडो, रोंजा	हजारीगल	सयपत्री	ग्याँदा, गाँदा
चमेली	मालतीपुष्पम्	चमेली	चंबेली	चंबेली	चंबेली	चमेली	चमेली	चमेली	चमेली	चामेली
चंपा	चम्पकम्	चंपा	चंपा	चंपा	चम्पा	चाफा	चापो, चाफो	चंपो	चम्पा, चम्पक चाँपो	चाँपा, चंपा चंपक
जूही	यूथिकापुष्पम	जूही	जूही	सॅन्दिजि पोश	चंबेलीअ जी जातीअ जे हिक किस्म जो गुलु, जुही	जुई	जूय	जुई	जुही	जूँइ,(जु)
डहेलिया	डाहलियापुष्पम्	डेलिया	डालिया	डहलिया	डेलियो, डेहलिया	डेळिया	डेलिया	डेलियो	डेलिया	डालिया
पलाश	किंशुकम्	पलाह	ढाक	फलाश	पलाश	पळसाचे फूल	पलास, पळस	पलाश	पलाँस	पलाश

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोडो
फुल	**लै**	**फुल, पुष्प**	**पूलु**	**पुष्पंगळ्, पूक्कळ्**	**पूक्कळ्**	**हूवु**	**फुल्ल**	**बाहा**	**फूल**	**बिबार, फुल**
कचनापुल	चीङ, थ्राओ	कांचन	कोविदारु	कोविदारप्पू	मलयकंत्ति	कंचिवाळ	कतरैड, करतैड	सिञ बाहा	कचनार	खान्सन
करबी	कबीरै	कनिअर	गन्नेरु	अरळिप्पू	अरळिप्पूवुॅ	कणिगले	गंढीला	कुलका बाहा	कनेर, कनैल	जेर्जेग्रि, गसाइ बिबार
पदुम, कमल	थम्बाल	पद्‌म	कमलमु	तामरैप्पू	तामर	तावरे	कमल	परायनि बाहा	कमल	फामि
केतेकी	केतुकी	केतकी	केतकि	ताळंबू	ताळंपू	केदगे	क्योड़ा केतकी	किया बाहा	केतकी	खेवथा, केतेकी
केतेकी	केतुकी-गुंबा मनम चेनबा	किआ	मोगिलि	ताळंबू	ताळंपू नुङशिबा	ताळे हू	क्योड़ा	किया बाहा लकानाः गे बाहा	केउरा	खेवथा, केतेकी
गोलाप	अदुगुलाब	गोलाप	गुलाबी	रोजाप्पू	रोसाप्पूवुॅ	गुलाबि	गलाब	गोलाप बाहा	गुलाब	गलाब
नाजी, गेंधारी	सनारै	गेंड़ु	बंति	जवंतिप्पू	कोकणिप्पूवुॅ जमंति	चण्डु हूवु	गुट्‌टा	कुसबि बाहा	गेना	गेन्दा
चामेली यूति	चमेली	चमेली	मल्लि	मल्लिगैप्पू	पिच्चिप्पूवुॅ	जाजि	चमेली	चामेलि	चमेली	सामेलि,मालथि बिबार,जेसमिन
मालती चंपा	लैहाओ	चंपा	संपंगि	सेण्बगप्पू	चेंपकम्	संपिगे	चंबा	चाम्पा	चंपा	सम्फा
यूति	जातिकुप्पी जाजि	जूई	सन्‍न-जाजि	मुल्लैप्पू	मुल्ल	सण्ण जाजी	चमेली, जूही	जुँइ	जूही	जुथि, जुहि
डालिया	डालिया	डालिया	-	डाळियाप्पू	डालिय	डेलिया	डेलिया	डालिया	डालिया	दालिया
पलाश	पाङ्गोङ्	पलाश	मोदुग	पुरसप्पू	प्लाश्	मुत्तुग	पलाह्	मुरुब बाहा मुरुत् बाहा	पलाश पलास	फालासो

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

काशी में लिखे गए थे सर्जरी के पहले पन्ने

काशी इतिहास के पन्नों, परंपराओं की डोर में बँधे रीति-रिवाजों, दंतकथाओं के किस्सों से भी कहीं पुरानी नगरी है! गंगा माँ के तट पर, भोजपुर-पूर्वांचल क्षेत्र में, उत्तर प्रदेश राज्य के दक्षिण-पूर्वी भाग में बसी यह पौराणिक नगरी अनादि काल से ही देश की बड़ी तीर्थस्थली बनी हुई है। यहाँ मिले अवशेषों का काल-निर्धारण करने से पता चला है कि ईसा से 1800 साल पहले भी यहाँ मानव सभ्यता का सूर्य चमकता रहा था।

बाबा शिव की यह नगरी पौराणिक काल से ही शिक्षा का बड़ा केंद्र रही है।

डॉ. यतीश अग्रवाल

संप्रति : डीन, स्कूल ऑफ मेडिसिन एंड एलाइड हेल्थ साइंसेज, गुरु गोबिन्द सिंह इन्द्रप्रस्थ यूनिवर्सिटी एवं वरिष्ठ प्रोफेसर, सफदरजंग अस्पताल।

प्रकाशन : हिंदी-अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में स्तंभ, लेख और रचनाएँ प्रकाशित। जनस्वास्थ्य, आयुर्विज्ञान और चिकित्सा कथा-साहित्य पर हिंदी-अंग्रेजी में 50 से अधिक जनप्रिय पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : आत्माराम पुरस्कार, राष्ट्रीय विज्ञान पुरस्कार, मेघनाद साहा पुरस्कार, शिक्षा पुरस्कार, इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च पुरस्कार, राजीव गांधी राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान पुरस्कार, इंदिरा गांधी पुरस्कार, विज्ञान भूषण, हिंदी अकादमी ज्ञान-प्रौद्योगिकी सम्मान।

संपर्क : ईमेल– dryatish@yahoo.com

सुश्रुत

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उसकी कीर्ति सहस्रों वर्षों से चारों दिशाओं में फैली है। इतिहास साक्षी है कि आयुर्वेद में शल्यविद्या के पहले पृष्ठ भी इसी नगरी में लिखे गए।

यह कथा ईसा से 600-700 साल पहले की है। जब बालक सुश्रुत ने प्राचीन काशी नगरी में पिता ऋषि विश्वामित्र के घर में जन्म लिया। उनका बचपन गंगा की लहरों के किनारे खेलते-पढ़ते बीता। बड़े होने पर उन्होंने काशीनरेश, धनवंतरि के शिष्य, राजा दिवोदास से आयुर्वेद की जीवनदायी शिक्षा ग्रहण की।

काशीनरेश के गुरुकुल में सुश्रुत के कई सहपाठी थे। उनमें औपधानव, औरभ और पौशकलावत सबसे मेहनती और प्रतिभाशाली थे। सभी सहपाठी गुरुकुल में ही रहते। गुरुजनों से शिक्षा पाते। गुरु की देख-रेख में रोगियों की समस्या सुनते, रोग का पता लगाने के लिए रोगी की जाँच करते और उपचार के बारे में गुरु से विचार-विमर्श करते। किसी रोगी का ऑपरेशन होता तो गुरु का हाथ बँटाते और शल्यविद्या के नियम सीखते।

उस काल में आयुर्वेद के ज्ञान का सूरज बुलंदियों पर था। आयुर्वेद शिक्षण संस्थानों में भर्ती होने के लिए मेधावी होना एक बात थी, प्रवेश के लिए इच्छुक छात्रों के चरित्र का भी मूल्यांकन किया जाता था। जिन छात्रों में मानव सेवा, कल्याण और परोपकार के गुण दिखते, मेहनत और लगन की प्रेरणा दिखाई देती, उन्हें ही गुरुकुल में स्थान मिलता।

जैसे आज डॉक्टर बनने के लिए छात्रों को कई विषयों का गहन अध्ययन करना पड़ता है और बहुत सी विद्याओं का प्रशिक्षण लेना पड़ता है, आयुर्वेद में निपुण होने के लिए उस काल में छात्रों को गुरुकुल में कई सालों तक पढ़ना पड़ता था। शरीर रचना विज्ञान के पाठ से शुरू होकर ब्रह्मांड के तीन मूल तत्वों वायु, अग्नि और जल से प्रेरित वात, पित्त और कफ का त्रिदोष सिद्धांत समझना पड़ता और उनके संतुलन-सामंजस्य में तरह-तरह के बिगड़ाव उत्पन्न होने से कैसे, कौन-सा रोग जन्म लेता है, छात्र यह प्रथम ज्ञान प्राप्त करते।

प्रत्येक रोगी के लक्षणों को त्रिदोष सिद्धांत के आधार पर जाँचना, उसकी दिनचर्या, व्यक्तित्व, शारीरिक और मानसिक क्रियाओं और उनमें आए दोषों को परखना, प्रत्येक रोग की सूक्ष्मताओं को समझना, विभिन्न भोज्य पदार्थों के गुणों और अलग-अलग रोग में आहार की उपयोगिता और आहार-संबंधी पथ्य के विषय में ज्ञान प्राप्त करना, विभिन्न द्रव्यों के गुणों-अवगुणों के बारे में जानकारी ग्रहण करना, आयुर्वेद में पारंगत होने के लिए प्रत्येक छात्र इस कठिन यज्ञ में दिन-रात जुटा रहता था।

इस गहन शिक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद युवा चिकित्सक सेवाधर्म में मन-प्राण-वचन से समर्पित हो जाता। मेहनत, लगन, अध्ययन-चिंतन, साधना और समर्पण उसके मार्गप्रेरक बने रहते। समय के साथ अनुभव की अग्नि में तपकर उसका ज्ञान प्रखर होता जाता, निपुणता की ज्योति का तेज बढ़ता जाता और उसकी वैद्यशाला का यश दूर-दूर तक फैल जाता।

सर्जरी का सूर्योदय

ऋग्वेद साक्षी है कि भारत में शल्य-तंत्र का उदय सिंधुघाटी सभ्यता काल में हो गया था। ऋग्वेद में दो अश्विनों का वर्णन जुड़वाँ देव-चिकित्सकों के रूप में मिलता है। ये आयुर्वेद के आदि आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने कई प्रकार की शल्यकला विद्याएँ स्थापित कीं।

सुश्रुत के आचार्य बनने से पहले यह समूचा ज्ञान छितरा हुआ पड़ा था। उसे संगठित करने और उसमें नई विरल तकनीकों को जोड़ने की बड़ी आवश्यकता थी। राजा दिवोदास के गुरुकुल से उत्तीर्ण होकर सुश्रुत इसी पुण्य मिशन में जुट गए। उन्होंने शल्य-तंत्र की सूक्ष्मताओं को समझा और अपने विवेक तथा अनुभव के आधार पर उसे सुव्यवस्थित किया। उसमें कई नए सिद्धांत गूँथे और कई नई शल्य तकनीकें जोड़ीं। फिर आयुर्वेद के समस्त ज्ञान को संगृहीत कर एक बृहत् संहिता के रूप में लिपिबद्ध किया। यही ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' के नाम से सदा के लिए अजर-अमर हो गया।

'सुश्रुत संहिता' में आयुर्वेद की सभी विद्याओं का वर्णन है, पर शल्य-तंत्र पर प्रकाश डालने वाला यह पहला विषद ग्रंथ है। उसमें शल्यचिकित्सा को दो प्रमुख शाखाओं में विभाजित किया गया है। पहला, शल्य-तंत्र और दूसरा, शालाक्य-तंत्र! 'शल्य-तंत्र' उन सभी छोटे-बड़े शल्य-कर्मों की व्याख्या करता है जिसे आज के समय में जनरल सर्जरी के रूप में देखा जाता है। जबकि 'शालाक्य-तंत्र' में कंठ से ऊपर के सभी अंगों जैसे कि मुँह, नाक, कान, आँख और शीष से जुड़े रोगों के शल्योपचार की जानकारी है। इसमें शलाका या कहें सलाई जैसे शल्य-यंत्र के माध्यम से सर्जरी की जाती थी। इसी से इस शल्य शाखा का नाम 'शालाक्य' रखा गया। शालाक्य-तंत्र में सुश्रुत ने 76 नेत्र रोगों, 31 नासा रोगों, 28 कर्ण रोगों, 11 शिरोरोगों और 65 मुखरोगों की व्याख्या की है।

300 प्रकार के ऑपरेशन

'सुश्रुत संहिता' में कुल मिलाकर लगभग 300 विविध प्रकार के शल्य-कर्मों का वर्णन है। हर ऑपरेशन को करने की विधि और उसमें काम आने वाले शल्य यंत्रों के बारे में विस्तार से बताया गया है। शरीर के किसी अंग में पीब पड़ जाने पर, कब उसमें चीरा देकर उसे पीब-मुक्त करना जरूरी है? यह चीरा कब, कहाँ और कैसे लगाना ठीक होगा? जब शरीर का कोई अंग भीतर जल भरने से फूल जाता है, तब उसमें सूई डालकर जल कैसे निकाला जा सकता है? मूत्राशय में पथरी बन जाने पर उसे निकालने का ऑपरेशन, भगंदर और बवासीर का ऑपरेशन, आँतों के ऑपरेशन जैसे जटिल शल्य-कर्मों की विधियाँ भी बताई गई हैं।

लड़ाई के मैदान में अस्त्र-शस्त्र के प्रहार से या दुर्घटना में चिर गई आँत के कटे हुए किनारों को जोड़ने के लिए सुश्रुत ने अद्भुत तकनीक खोज निकाली थी। चिरी हुई आँत के दोनों हिस्सों को ठीक से आपस में सटाकर उन पर बड़े चींटे बिठा दिए जाते। ये चींटे अपने मजबूत दाँतों से आँत के दोनों हिस्सों को अपनी पकड़ में ले लेते। इसके बाद चींटों का सिर कलम कर दिया जाता। नतीजतन चींटों के मजबूत दाँतों से सिले आँत के दोनों हिस्से आपस में मजबूती से सिल जाते। उदर के विभिन्न ऊतकों पर और त्वचा पर टाँके भर दिए जाते। आँत का घाव कुछ ही दिनों में भर जाता। चींटों के सिर अपने से भीतर-ही-भीतर घुल जाते।

शल्य यंत्र

दुर्घटनाओं में चोटिल हुए रोगियों के उपचार और गहन देख-रेख में भी आचार्य सुश्रुत को विशेषज्ञता प्राप्त थी। सुश्रुत संहिता में 12 प्रकार के अस्थिभंग (फ्रेक्चर) और छह प्रकार के संधिमुक्त दोषों (ज्वाइंट डिसलोकेशंस) का वर्णन मिलता है। टूटी हुई हड्डी को जोड़ने और जोड़ से दूर हटी हड्डियों को अपने स्थान पर लौटाने की कुशल हस्त-तकनीकों की भी इस ग्रंथ में सुंदर व्याख्या है।

उम्र के साथ आँख में उतरे मोतियाबिंद का ऑपरेशन, दंत चिकित्सा, कटे हुए नाक के स्थान पर माथे से त्वचा लेकर नई नाक की पुनर्रचना, कटे हुए कान का शल्य-शृंगार जैसे उन्नत ऑपरेशन भी विस्तार से बताए गए हैं। इनमें से कुछ ऑपरेशन आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी में आज भी प्रचलित हैं।

सुश्रुत संहिता में प्रसूति शल्यविद्या पर भी भरी-पूरी जानकारी है। प्रसूति के समय यदि प्रसव बीच में रुक जाए तथा माँ और शिशु का जीवन संकट में आ जाए तो माँ के पेट के निचले हिस्से में चीरा लगा कर बच्चे को जन्म देने का ऑपरेशन किया जाता था। यह ऑपरेशन आज के सीजेरियन ऑपरेशन जैसा ही था।

नाना प्रकार के शल्य यंत्र, शस्त्र, सूइयाँ और तागे

सुश्रुत संहिता में 101 प्रकार के शल्य यंत्रों का वर्णन है। इन शल्य यंत्रों के नाम पशुओं और पक्षियों के मुँह की बनावट के अनुसार रखे गए थे। शेर के मुख जैसे शल्य यंत्र का नाम 'सिंहमुख', गिद्ध के मुँह जैसे का 'गृध्रमुख', मगरमच्छ के मुँह जैसे का 'मक्रमुख'! ये शल्य यंत्र बहुत कुछ आधुनिक शल्य यंत्रों जैसे ही काम करते थे।

इन शल्य यंत्रों के साथ 20 शल्य शस्त्रों का भी वर्णन है। उनके नाम भी उनसे मिलती-जुलती बनावट वाली चीजों के नाम पर रखे गए थे। घूमी हुई तलवार जैसे शल्य शस्त्र का नाम 'मंडलाग्र', आरे जैसे शल्य शस्त्र का नाम 'करपत्र', अंगूठी जैसे शल्य शस्त्र का नाम 'मुद्रिका', चावल के दाने जैसे शल्य शस्त्र का नाम 'व्रीहिमुख'!

सुश्रुत संहिता

कई किस्म की सूइयाँ भी उपयोग में लाई जाती थीं। कुछ मोटी होतीं, कुछ पतली, कुछ अधिक घुमाव लिए हुए होतीं, तो कुछ में कम घुमाव और कुछ बिलकुल ही सीधी होतीं। उनका इस्तेमाल अलग-अलग ऊतकों की मोटाई और बनावट को ध्यान में रख कर किया जाता था।

ये सभी शल्य यंत्र और शल्य शस्त्र लौह धातु या चाँदी से बनाए जाते थे। उनमें यह गुण होता था कि न तो समय के साथ उनकी धार कमजोर पड़ती थी और न ही उनमें जंग लगती थी। उन्हें लकड़ी के विशेष डिब्बों में रखा जाता था।

त्वचा और ऊतकों पर टाँके कसने के लिए तरह-तरह के तागे भी विकसित किए गए थे। कुछ रेशम की डोर से बने होते थे, तो कुछ सूत से बनाए जाते थे। कुछ चमड़े के होते थे तो कुछ घोड़े के बाल से बने होते थे।

घाव के भरने के लिए उस पर तरह-तरह की पट्टियाँ की जाती थीं। उन्हें रूई, रेशम और मलमल से बनाया जाता था। ऑपरेशन के बाद स्वास्थ्य लाभ कर रहे रोगी के आहार, पथ्य, औषधियों और सावधानियों पर पूरा ध्यान दिया जाता था।

ज्ञान का भंडार

सुश्रुत संहिता में संचित ज्ञान प्राचीन भारत के उन्नत चिकित्सा शास्त्र का जीता-जागता दस्तावेज है। उसके दो खंड हैं : पूर्व तंत्र जिसमें मूल पुस्तक है और उत्तर तंत्र जो अनुशेष है। पूर्व तंत्र पाँच भागों में बँटा है—सूत्र स्थान, निदान स्थान, शरीर स्थान, चिकित्सा स्थान और कल्पस्थान। 'सूत्र स्थान' में चिकित्सा शास्त्र के मूल सिद्धांतों की व्याख्या है। 'निदान स्थान' में विभिन्न रोगों के कारक और लक्षणों का विस्तार है। 'शरीर स्थान' में शरीर रचना विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान का समावेश है। 'चिकित्सा स्थान' में औषधि विज्ञान, जड़ी-बूटियों, रसायनों, भस्मों और नाना प्रकार की उपचार विधियों की सरगम है। 'कल्पस्थान' में विष विज्ञान का वर्णन है।

कुल मिलाकर ये 120 अध्याय इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि ईसा से 600-700 साल पहले प्राचीन भारत का चिकित्सा शास्त्र विश्व के अन्य देशों की तुलना में कहीं आगे था। सुश्रुत संहिता में अन्य रोगों के साथ-साथ क्षय रोग, कुष्ठ रोग, मधुमेह, हृदय रोग, हृत्शूल एनजाइना और विटामिन सी की कमी से होने वाले स्कर्वी रोग का सुंदर वर्णन मिलता है।

आचार्य सुश्रुत के भीतर असाधारण वैज्ञानिक तन्मयता छिपी थी। उनकी सत्य की खोज दुर्लभ थी, क्षमताएँ आश्चर्यजनक थीं। मानव शरीर रचना विज्ञान का ज्ञान पाने के लिए उन्होंने अनूठे प्रयोग रचे। मृत देह को किसी भारी पत्थर से बाँधकर किसी छोटी नहर में डुबो दिया जाता। सप्ताह बाद जब बाहरी त्वचा और ऊतक फूल जाते, तब झाड़ियों और पेड़-पौधों की लताओं से बने ब्रुशों से उन्हें शरीर से अलग कर दिया जाता। इससे शरीर के विभिन्न आंतरिक अंगों की रचना सामने आ जाती। शिराएँ, धमनियाँ, तंत्रिकाएँ, अंग—उनका शरीर में स्थान और उनकी रचना साफ नजर आ जाती।

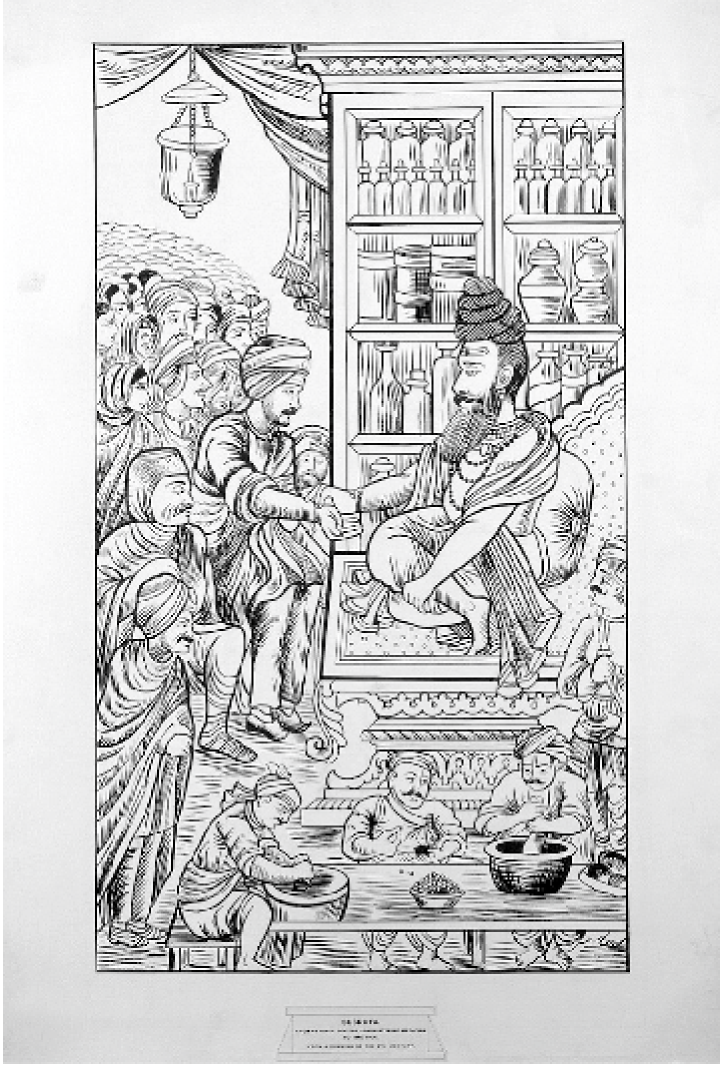

सुश्रुत

आचार्य सुश्रुत का अद्भुत गुरुकुल

गुरु के रूप में भी आचार्य सुश्रुत ने नाना प्रकार के प्रयोग किए। शल्यविद्या का आरंभिक प्रशिक्षण देने के लिए वे अपने शिष्यों को कंद-मूल, फल-फूल, पेड़-पौधों की लताओं, पानी से भरी चमड़े की मशक, चिकनी मिट्टी के ढाँचों और मलमल के मानव पुतलों पर कई-कई दिन, कई-कई सप्ताह, कई-कई महीने अभ्यास कराते। शरीर पर चीरा लगाने से पहले शिष्यों को ककड़ी, करेले, तरबूज जैसे फल-सब्जियों पर कई-कई सप्ताह अभ्यास करना पड़ता। जब तक शिष्य चीरा लगाने की तकनीक, उसकी दिशा, उसकी गहराई, उसकी लंबाई ठीक से सीख न लेता, यह प्रशिक्षण चलता रहता। कोई घाव कितना गहरा है, यह अनुमान लगाने के लिए उसे दीमक खाई हुई लकड़ी पर प्रशिक्षण दिया जाता। कमल के फूल की डंडी, रक्तवाहिनी (शिरा) बन जाती, जिस पर शिष्य को सूई से बेधने का अभ्यास करना पड़ता। टाँके लगाने का प्रशिक्षण तरह-तरह के कपड़े और चमड़े पर दिया जाता। खुरदरा चमड़ा, जिस पर बाल रहते, उस पर खुरचने की कला सिखाई जाती। पट्टी बाँधने का प्रशिक्षण देने के लिए मानव पुतलों का उपयोग किया जाता।

प्रशिक्षण के इस प्रथम चरण में उत्तीर्ण होने के बाद ही शिष्य के प्रशिक्षण का दूसरा चरण शुरू होता। अब वह किसी निपुण शल्य चिकित्सक के संरक्षण में पर्यवेक्षक के रूप में तरह-तरह की शल्य क्रियाएँ होते देखता और उसका हाथ बँटाता। जैसे-जैसे उसमें शल्य तंत्र की समझ और शल्य-कर्म करने की कला आती, वैसे-वैसे उसे छोटे-छोटे ऑपरेशन करने की अनुमति मिलती जाती। फिर वह गुरु की देख-रेख में छोटे से बड़े ऑपरेशन करने लगता और शल्य तंत्र में पूर्ण प्रशिक्षण पाने के पश्चात स्वतंत्र कार्य करने के लिए परिपक्व हो जाता।

आचार्य सुश्रुत के काल से लेकर सन् 1000 ई. तक का समय भारतीय चिकित्सा शास्त्र का स्वर्णिम युग रहा। आत्रेय, चरक, जीवक और वाग्भट जैसे बहुत से यशस्वी आचार्यों ने आयुर्वेद के मूल सिद्धांतों की स्थापना की। काशी के साथ-साथ नालंदा और तक्षशिला के प्राचीन विश्वविद्यालय सैकड़ों वर्षों तक ज्ञान-विज्ञान के सिरमौर बन विश्वविख्यात रहे। दूर-दूर से शिक्षार्थी यहाँ आकर चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करते और उपनिषदों में पूर्वजों की मंगल वाणी 'सर्वे संतु निरामयाः' को सत्य करने के लिए मानव कल्याण की प्रतिज्ञा लेते!

शून्य की खोज
विश्व की सांझी विरासत

"सहस्त्रं में ददतो अष्ट कर्ण्याः"

—ऋग्वेद (मंडल 10; सूक्त 62; श्लोक 7)

अर्थात "मनुपुत्र नाभानेदिष्ट ने आठवें मनु राजा सावर्णि से एक हजार गायें देने का आग्रह किया जिनके कान पर अंक 8 अंकित है।"

उपरोक्त कथन को पढ़कर आपको निम्न तीन बातें समझनी चाहिए—

1. हमने यहाँ आठ को अंक 8 के रूप में लिखा है, परंतु हजार को शब्द के रूप में लिखा है, आंकिक रूप में नहीं लिखा है।

2. हिंदू गणितज्ञों ने अंक लेखन पद्धति का विकास करके उसका उपयोग करना बहुत पहले से ही आरंभ कर दिया था और इसमें समय के साथ बहुत सुधार किए।

3. शून्य अंक और शून्य की अवधारणा अर्थात कांसेप्ट में फर्क है।

शून्य की खोज का पूर्ण श्रेय किसी भी एक सभ्यता को नहीं है, हिंदू गणितज्ञों को

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ 1 ॥
य उदाजन् पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन् परिवत्सरे वलम् ।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ 2 ॥
य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन् पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ 3 ॥
अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ 4 ॥
विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः ।ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ॥ 5 ॥
ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि। नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ॥ 6 ॥
इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ॥ 7 ॥
प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु । यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥ 8 ॥
न तमश्नोति कश्चन दिव इव सान्वारभम् । सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ॥ 9 ॥
उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा । यदुस्तुर्वश्च मामहे ॥ 10 ॥
सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥ 11 ॥

भी नहीं है। गणितीय इतिहास में हिंदू पहले नहीं हैं जिन्होंने शून्य के सिद्धांत का दैनिक उपयोग करना प्रारंभ किया था। हिंदुओं ने अन्य सभ्यताओं की तरह ही इस सिद्धांत की स्वतंत्र खोज की और इसको अपने दैनिक कार्य के लिए परिष्कृत (Refine) किया।

शून्य का अर्थ अभाव, अनुपस्थिति और यहाँ तक कि रिक्तता के संबंध में लिया गया है। अंग्रेजी का जीरो अरबी के सिफर (Sifr) से आया है, अरबी का ये सिफर संस्कृत के शून्य से, और जिसका अर्थ है—रिक्तता (Emptiness)। संस्कृत की तुलना में अंग्रेजी जड़त्व वाली भाषा है। शून्य को अंग्रेजी का जीरो बोलना संस्कृत के प्रति अज्ञान है।

"अपुत्रस्य गृहं शून्यं, दिशः शून्यंस्त्व अबान्धवः मूर्खस्य हृदयं शून्य, सर्व शून्य दरिद्रता।"

अर्थात "बालक के अभाव में घर शून्य है जिसका कोई मित्र या संबंधी नहीं, उसके लिए सर्व दिशा शून्य है। मूर्ख व्यक्ति का हृदय शून्य है तथा गरीबी में सभी शून्य है।" (*चाणक्यनीति अध्याय 4; श्लोक 14*)

ईसा से लगभग 3000 पहले गीली मिट्टी के स्लेट पर सुमेरियन लोगों ने लिखना शुरू कर दिया था। लगभग 2300 ईसा पूर्व सार्गन (Sargon of Akkad) ने सुमेर और मेसोपोटामिया के अन्य शहरों को जीत लिया और ऐतिहासिक अकेडियन साम्राज्य की स्थापना की थी। यहाँ उन्होंने गिनने की सेक्साजेसिमल (Sexagesimal) प्रणाली का उपयोग करना शुरू किया। यही गणन पद्धति सुमेरियन उपयोग में ले रहे थे। इसमें गणना का आधार (Base) 60 था और यही गिनते वक्त किसी जगह किसी

दिनेश मंडोरा

जन्म : 01 दिसंबर, 1995, अलवर, राजस्थान।

शिक्षा : अभियांत्रिकी में स्नातक।

प्रकाशन : प्रधानमंत्री युवा लेखक योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय वैज्ञानिक' शीर्षक से पुस्तक प्रकाशित। साथ ही भौतिकी और अन्य विज्ञान का सहज हिंदी भाषा में लेखन।

संपर्क : मोबाइल— 7014005051

ईमेल— dineshmandoramail@gmail.com

अंक की कोई वैल्यू नहीं होती थी तो उसको खाली छोड़ देते थे। इसी खाली स्थान को अकेड़ियन (Akkadian) लोग 'ना-टुक' (na-tuk) कहते थे जिसका मतलब 'Nothing' अर्थात 'कुछ भी नहीं' होता है।

गणितीय संगणनाओं से संबंधित सबसे पुरानी ज्ञात मिट्टी की गोली (Scheyen MS 3047) आज शेयेन संग्रह में रखी हुई है। यह 27वीं शताब्दी ईसा पूर्व सुमेर (अब इराक) की एक गुणन तालिका है जो दर्ज की गई लंबाई के उत्पाद के रूप में क्षेत्रफल देती है। टोकन इंप्रेशन पर ध्यान दें, जिसके बारे में आप एक अन्य अभिसरण लेख, "Mathematical Treasure: Mesopotamian Accounting Tokens." में विस्तार से पढ़ सकते हैं। टैबलेट की ऊँचाई और चौड़ाई 3 इंच से कम है और मोटाई एक इंच से भी कम है।

इसी प्रकार दूसरी शताब्दी के मध्य बेबीलोन के गणितज्ञ भी सेक्साजेसिमल (Sexagesimal) प्रणाली का उपयोग कर रहे थे। वहीं मध्य अमेरिका में भी मायन सभ्यता (जिनका कैलेंडर 2012 में ख़त्म हो गया था) विजेसिमल (Vigesimal) अर्थात बीस (20) के आधार की गणन पद्धति काम में लेते थे। उनके पास भी शून्य लिखने का प्रचलन था। वो पत्थर और लकड़ियों से लिखते थे। पत्थर 1 दिखाते थे और लकड़ी 5 अंक दिखाती थीं। 19 के बाद 20 लिखने के लिए सीपिया काम में लेते थे।

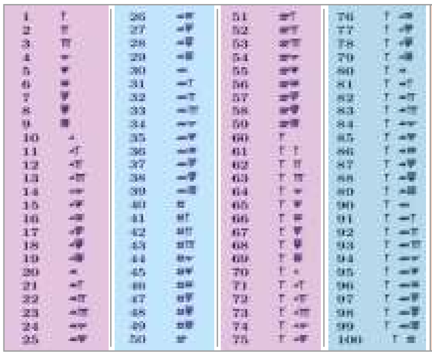

बेबीलोनियाई अंकों की एक तालिका 1 से 100 तक

मायन गिनती प्रणाली

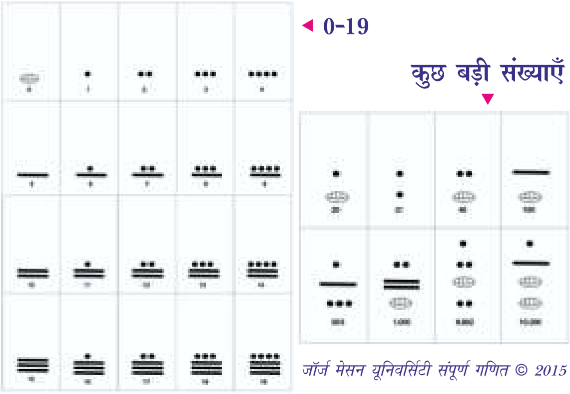

जॉर्ज मेसन यूनिवर्सिटी संपूर्ण गणित © 2015

इसी प्रकार नष्ट हो चुकी प्राचीन मिस्र (Egyptian) सभ्यता में भी ईसा से 1770 वर्ष पहले दैनिक गणना में मौजूद अंक पद्धति में शून्य कभी अंकों में नहीं लिखा गया। मिस्र के लोग शून्य का अंकन करके के लिए 'छति' का अंकन करते थे। इसका मतलब सुंदर भी होता था और शून्य दर्शाने के लिए भी होता था। इसमें गणना का आधार 10 था। सुंदर इसीलिए क्योंकि मिस्र की सभ्यता में सबसे खूबसूरत रानी नेफ़रतीति (Nefertiti) फैरोह राजा (Pharaoh Akhenaten) की पत्नी थी।

श्रेणीबद्ध अंक

स्पेनिश आक्रांताओं द्वारा लूटे जाने, कटने और नष्ट होने से पूर्व 'इंका साम्राज्य' (Inca Empire) में रंगीन धागों और गाँठों का उपयोग करके नियमित लेन-देन और सौदों का विवरण एक उपकरण 'की-पा' (Quipa) में रखा जाता था। की-पा एक नजर में आपको एक बेकार धागों और गाँठों का समूह लग सकता है, परंतु यह इंका साम्राज्य का कंप्यूटर था। यह अलग-अलग प्रकार की जानकारी सहेज सकता था और इसमें भी गिनने का आधार 10 था और यह अंक प्रणाली ईसा से 2000 वर्ष पूर्व वे काम में ले रहे थे।

हलागा केचवा से संख्यात्मक शब्दों की एक मूल सूची इस प्रकार है :

huk	1	*qanchis*	7
ishkay	2	*pusaq*	8
kimsa	3	*isqun*	9
chusku	4	*chunka*	10
pichqa	5	*pachak*	100
suqta	6	*waranqa*	1000.

अधिक जटिल संख्या वाले शब्दों का प्रारूप है : [गुणक] {नाभिक} (योजक)। नाभिक सदैव दस की घात होता है। नीचे दिए गए कुछ उदाहरण उपरोक्त संकेतन को प्रदर्शित करते हैं, अर्थात, गुणक - [ ], नाभिक - { } और योजक - ( )।

1. *isqun pachak:* [9] {100} = 9 × 10 = 900.
2. *qanchis chunka pichqa:* [7] {10} + (5) — 75.
3. 347,002 = [[3] {100} ([4] {10} (7))] {1000} (2).
   kimsa pachak chusku chunka qanchis waranqa ishkay.

अमेरिकन इंडियन का स्मिथसोनियन राष्ट्रीय संग्रहालय

यूरोप में पहली बार अंक प्रणाली ईसा से 331 वर्ष पूर्व आई जब सिकंदर ने बेबीलोन उजाड़ दिया तब जाकर शून्य ग्रीस के साम्राज्य में आया था।

दूसरी ओर हिंदू गणितज्ञों द्वारा भी अंक पद्धति को बहुत परिष्कृत किया गया था। संपूर्ण एशिया में ही पहली बार शून्य पिंगला के छंद सूत्र में आता है और यह दशमलव अंक पद्धति के लिखे जाने का सबसे पहला ऐतिहासिक डॉक्यूमेंट है जहाँ शून्य को संकेत के रूप में लिखा गया। यह वह शून्य लिखने का प्रकार नहीं है, जैसा आज लिखा जाता है। यह भी अन्य सभ्यताओं की तरह ही संकेत रूप में लिखा गया शून्य था।

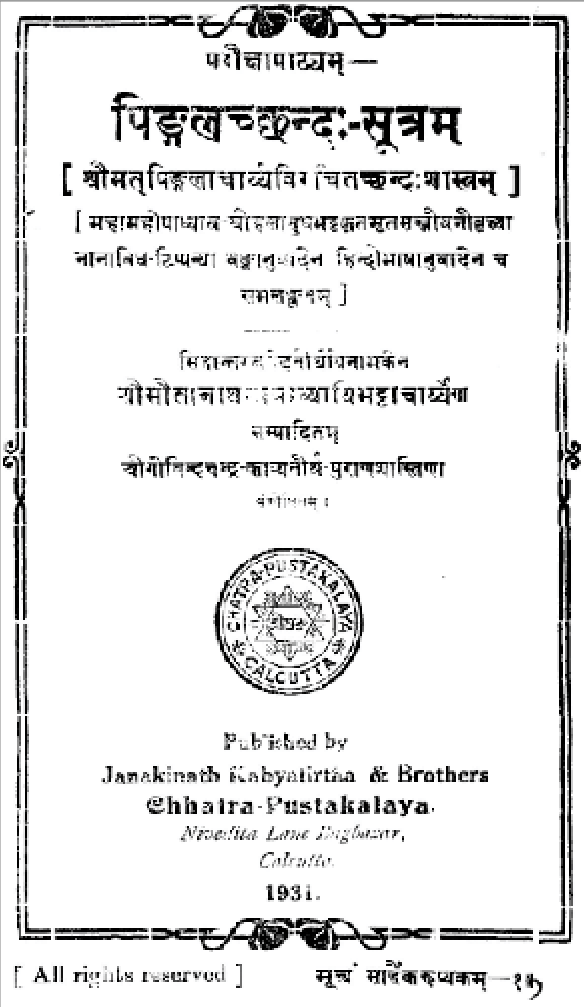

70 भोज पत्रों (Birch Bark) के ऊपर लिखित प्राचीन हस्तलिखित पांडुलिपियों का समूह पेशावर के उत्तर-पूर्व में 80 किलोमीटर दूर बख्शाली क्षेत्र में मई-1881 में मिला और यह क्षेत्र

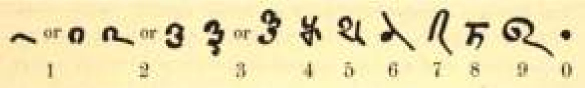

कभी गांधार प्रांत का हिस्सा होता था। इन पांडुलिपियों को 'बख्शाली पांडुलिपि' कहा जाता है। शारदा लिपि और उत्तर-पश्चिमी प्राकृत तथा संस्कृत सम्मिलित गाथा बोली (Gatha Dialect) में लिखी

हस्तलिपि में शून्य को बिंदु या छोटे गोले के रूप में प्रदर्शित किया गया था, जिसे 'शून्यस्थान' कहा गया और आगे चलकर 'शून्यबिंदु' के रूप में परिवर्तित हो गया।

बख्शाली पांडुलिपि का एक पृष्ठ
(17 छंद)

इसके एक लंबे समय बाद आर्यभट्ट प्रथम ईसा पश्चात 498 में अपनी पुस्तक 'आर्यभटीय' के 'दशगीतिकपद' अध्याय के द्वितीय श्लोक में शून्य के संबंध में बात करते हैं। वराहमिहिर के समकक्ष जैन विद्वान जिनभद्रगणि (Jinabhadragani) छठी शताब्दी में शून्य को एक एकल पूर्ण अंक के रूप में लिखते हैं। इसी शताब्दी के आस-पास श्री व्यास भाष्य पतंजलि के योगसूत्र पर अपने कार्य लिखते हैं :

"यथा एक रेखा शत स्थाने शतं दशस्थाने दश एकंच स्थाने एक"

अर्थात "केवल एक ही रेखा सौ स्थान पर 100, दस स्थान पर 10 तथा एक ही स्थान पर 1 प्रदर्शित करती है।"

भारतभूमि में भी किसी की एकमात्र विशिष्ट अंक प्रणाली नहीं थी। पूर्वी अफगानिस्तान से लेकर उत्तर में पंजाब तक अर्थात गांधार प्रदेश में महान सम्राट अशोक (273-236 ईसा पूर्व) के समय खरोष्ठी अंक प्रणाली खोजी गई थी। इसी समय में ब्राह्मी लिपि में रचित अंक प्रणाली उत्तर से मध्य एशिया तक फैली हुई थी।

खरोष्ठी अंक

ब्राह्मी अंक

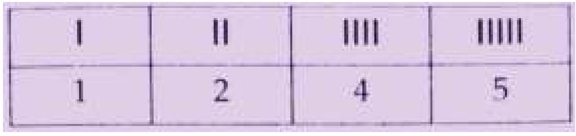

(देशपांडे, एस.पी.–'शून्य की अवधारणा', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से साभार)

ईसा से 200 वर्ष पूर्व के छंद सूत्र, द्वितीय शताब्दी की बख्शाली पांडुलिपि से लेकर छठी शताब्दी के भास्कराचार्य द्वितीय और अन्य विद्वानों तक यह स्थापित सत्य है कि हिंदुओं ने अपने स्तर पर गणित और खासतौर पर अंक गणित से लेकर बीजगणित तक का विकास बहुत विस्तृत दौर में किया था। इसके लिए किसी एक ही व्यक्ति को सम्मानित कर देना नाइंसाफी है।

आपके प्रश्न में जो शून्य है, उसका उद्‌भव भारतीय नहीं है, यह भारतीय ज्ञान का कालांतर में वर्षों तक हुए अनुवाद और अपभ्रंश से निकला आधुनिक अंक है। आर्यभट्ट जब हुए तब गुप्त साम्राज्य के राजा बुद्धगुप्त के काल को भारत का स्वर्णिम काल कहा जाता है।

सर्वप्रथम आर्यभट्ट ने ही कहा था–

"छायदति शशी सूर्य शशिनं महती च भूच्छाया"

अर्थात् "सूर्य ग्रहण के समय चंद्रमा सूर्य को और चंद्र ग्रहण के समय पृथ्वी चंद्रमा को ढक लेती है।" राहु-केतु की प्रचलित अवैज्ञानिक वैदिक अवधारणा के विपरीत होने के कारण ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट्ट का विरोध किया था।

1. जब ब्रह्मगुप्त चक्रीय चतुर्भुज (Cyclic Quadrilateral) का समीकरण लिख रहे थे तब प्रोफेट मोहम्मद जीवित थे और अरबी में एक भी गणित या खगोलशास्त्र संबंधी पुस्तक नहीं थी। प्रोफेट मोहम्मद के उत्तराधिकारी के रूप में जब खलीफ़ा अल-मंसूर ने दजला के मुहाने पर बग़दाद बसाया तब गणित और खगोलशास्त्र की हिंदू किताबों का अनुवाद किया गया।

2. पहली किताब 'ब्रह्मगुप्त की ब्रह्मस्फुट सिद्धांत' का अनुवाद 'अलसिंध हिंद' (Alsind-Hind) नाम से मोहम्मद इब्न इब्राहिम अल फजरी ने किया। दूसरी किताब 'खंडखाद्यम्' का अनुवाद 'अल-अरकंड' (Al-Arkand) नाम से याकूब बिन तारिक़ ने किया था। ये दो किताबें अरब में खगोल और गणित की गति के लिए जिम्मेदार कारकों में से मुख्य कारक रही थीं।

"अरबी लोग बीजगणितीय ज्ञान के निर्माता नहीं थे, बल्कि हिंदुओं से ज्ञान प्राप्त करने वाला तबका थे।" भारत से बीजगणित ने अरब जाने से पहले ही श्रेष्ठतम स्तर प्राप्त कर लिया था।

वैज्ञानिक ज्ञान में किसी भी दावे का कोई तुक नहीं है। गणित और भौतिकी के नियम मानव निर्मित नियम नहीं हैं। ये प्राकृतिक नियम हैं जिन्हें अत्यंत बुद्धिमान इंसानों ने लिपिबद्ध कर दिया। इसीलिए इस क्षेत्र को 'नेचुरल साइंस' कहा जाता है। इनका उपयोग करके इनसे इंजीनियरिंग और विकसित समाज का निर्माण कर लिया। एक ही खोज एक ही समय में दो से लेकर 10 लोग अलग-अलग काल, स्थान और तरीकों से खोजकर समान निष्कर्ष पर आ सकते हैं। यही वैज्ञानिक विधि है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में भौतिक शास्त्रीय विचार

– नारायण गोपाल डोंगरे
– शंकर गोपाल नेने

जब से मानव ने इस पृथ्वी पर अन्य जीवों के साथ अपना स्थान बनाया तभी से उसके अंदर प्रकृति के रहस्यों को जानने की दुर्दम्य आकांक्षा बनी रही है। ऐसा इसलिए है कि अन्य जीव-जंतुओं की तुलना में मनुष्य के अंदर प्रखर प्रतिभा, संवेदनशीलता तथा अपार कल्पनाशक्ति का वास है। प्रकृति में स्थित भौतिक तथा पराभौतिक संवेदनशील वस्तुओं से संबद्ध बाह्य एवं आंतरिक घटनाओं के रहस्यों तथा उनकी उत्पत्ति के बारे में वह सदा जिज्ञासु रहा है। शुरू-शुरू में तो आवश्यक ज्ञान की कमी तथा जरूरी उपकरणों की अनुपलब्धता की वजह से मानव की इस जिज्ञासा यात्रा का क्षेत्र बहुत सीमित था, परंतु शनैः-शनैः इस जिज्ञासा की पूर्ति करने के लिए उसने एक सुव्यवस्थित जुगत लड़ाई। किसी भी अवधारणा या विचार को सिद्ध करने के लिए अग्रलिखित चार प्रमाण आधारों का सहारा लिया जाने लगा—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द। फिर तो प्रकृति के गहन रहस्यों को जानने के लिए अनगिनत अवधारणाएँ उभरकर सामने आईं। इन सब प्रयत्नों के फलस्वरूप पहली बार प्रकृति के संरचनात्मक तत्वों का बखान करने वाले भिन्न-भिन्न नियमों, सिद्धांतों तथा मतवादों की उद्भावना हुई। आगे चलकर यही नियम, सिद्धांत तथा मतवाद भिन्न-भिन्न प्रकार के दार्शनिक मतों तथा प्राकृतिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के रूप में संस्थापित हो गए। इन दार्शनिक मतों तथा विज्ञान-सिद्धांतों का यथावत् ग्रंथन मुख्य रूप से सूत्रकाल (800-200 ई.पू.) में सूत्रों के रूप में किया गया। इन सूत्र ग्रंथों पर यथासमय टीकाएँ तथा भाष्य किए गए। फलस्वरूप इन सूत्रग्रंथों का ज्ञान भली-भाँति लोगों को है। ऐसा होने पर भी यह देखने में आता है कि इन सूत्र ग्रंथों का अध्ययन और विश्लेषण जिस समग्रता के साथ होना चाहिए था, नहीं हो पाया है।

भारत में वेद, अलग-अलग दर्शन और अध्यात्म पर आधारित कई ज्ञानग्रंथों पर किए गए अध्ययन से यह विदित होता है कि यह अध्ययन सभी दृष्टि से परिपूर्ण है। पर भौतिक जगत से संबंधित अधिकांश विषय जैसे कि ज्योतिष, औषधि, रसायन, अभियांत्रिकी तथा अन्य प्रौद्योगिकी आदि विषय संशोधन की दृष्टि से उपेक्षित रहे हैं। फलतः उनका विकास भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाया है। कणाद ऋषि के वैशेषिक शास्त्र का भी यथायोग्य अध्ययन नहीं हो पाया है। बहुत कम लोगों का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट हो सका कि वैशेषिक शास्त्र वास्तव में आज के भौतिक विज्ञान के सिद्धांतों का प्रतिपादन करता रहा है। इसे यदि भौतिक विज्ञान की पुस्तक कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। दर्शनशास्त्रों के मान्य सिद्धांतों और विचारों को अब तक बहुत से भाष्यों, व्याख्याओं और टीका-टिप्पणियों द्वारा प्रतिपादित तो किया जा चुका है, पर पिछले 2500 सालों में इन सिद्धांतों की न तो गणितीय व्याख्या की गई है और न ही कभी इन सिद्धांतों की वैज्ञानिक दृष्टि से प्रयोगशालाओं में या फिर आवश्यक उपकरणों द्वारा पुष्टि ही हुई है।

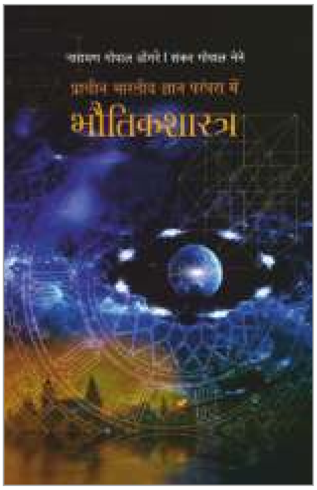

पृष्ठ : 194
मूल्य : रु. 235/-
आई.एस.बी.एन. : 978-81-237-9250-7

प्राचीन भारतीयों को विज्ञान की समझ भली-भाँति रही

वैदिक साहित्य संभवतः संसार भर के ज्ञान-साहित्यों में सबसे प्राचीन साहित्य है। वेद का अर्थ ही ज्ञान है। जीवन से संबंधित सभी विषयों का ज्ञान ही वेद है। विविध प्रकार के पुरातन ग्रंथों द्वारा अब यह सिद्ध हो चुका है कि भारत के लोगों को विज्ञान के विविध विषयों का अच्छा ज्ञान था। सूत्रकाल (800-200 ई.पू.) के दौरान रची गई अनेक रचनाओं और कृतियों का अब पता लगाया जा चुका है। इन ग्रंथों द्वारा ऐसा विदित होता है कि रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, धातु विज्ञान जैसी अनेक विज्ञान शाखाओं का तथा प्रौद्योगिकी का ज्ञान रखने वाले लोग तो भारत में थे ही, साथ ही प्रायोगिक विज्ञान के बारे में भी इन लोगों को अच्छी जानकारी थी। प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में पाए जाने वाले विज्ञान संबंधी विचारों तथा पाश्चात्य आधुनिक विज्ञान परंपरा में पाए जाने वाले विज्ञान संबंधी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों विचारों के मूल में कहीं-न-कहीं सादृश्य तथा सर्वात्मकता विद्यमान है।

वैशेषिक शास्त्र : भौतिक शास्त्र एवं पराभौतिक शास्त्र के रूप में

भौतिक शास्त्र की तरह वैशेषिक शास्त्र में भी माना गया है कि संपूर्ण विश्व विभिन्न पदार्थों (पद+अर्थ) से मिलकर बना है। यहाँ हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस लेख में पदार्थ या राशि शब्दों का प्रयोग हम 'Physical Quantity' के अर्थ में कर रहे हैं। सारी मूल भौतिक राशियाँ निम्नलिखित सात श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं : 1. उनके वर्ग या सामान्य अर्थात मेज बनाकर, 2. विशेष (विगतः शेषः यस्मात् सः) अर्थात् अंतिम एकल अविभाज्य लघुतम अंश अर्थात् partlessness को खोज कर, 3. इन्हें एक सदृश या सम-अवयवी समवाय श्रेणियों में रखकर, 4. कभी-कभार अभाव द्वारा। यह चारों तर्काधारित भौतिक राशियाँ हैं जिनमें से अन्य वास्तविक सत्ताजातीय भौतिक राशियाँ उभरती हैं। इन सत्ताजातीय या वास्तविक पदार्थों या भौतिक राशियों को एक समूह में रखकर उन्हें आधारभूत राशि माना गया है। ये राशियाँ हैं : 1. द्रव्य, फिर उस द्रव्य राशि के, 2. गुण तथा 3. कर्म। वैशेषिक सूत्रों में इन राशियों को इस क्रम से परिगणित किया गया है : 1. द्रव्य, 2. गुण, 3. कर्म, 4. सामान्य, 5. विशेष और 6. समवाय। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि वैशेषिक सूत्रकार ने अभाव पदार्थ को नहीं माना है, परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि वैशेषिक सूत्रों के भाष्यकार तथा टीकाकारों को इसे मानने में कोई आपत्ति नहीं रही।

ऊपर उल्लिखित चार मूल तर्काधारित राशियों : 1. सामान्य, 2. विशेष 3. समवाय तथा 4. अभाव, को अच्छी तरह समझाने की दृष्टि से हमने इस पुस्तक में एक अभिनव पद्धति अपनाई है। हमने इन्हें गणितीय समीकरणों तथा प्रमेयों के रूप में अभिव्यक्त किया है। ऐसा यदि न किया जाए तो बड़ी जटिल भाषा का प्रयोग तो करना ही पड़ सकता है, साथ ही ढेर सारा लिखना भी पड़ सकता है। इतना सब करने पर भी अभिव्यक्ति संख्यात्मक या मात्रात्मक न होकर केवल गुणात्मक या वर्णनात्मक ही रह जाती है। समीकरणों का प्रयोग करने से अभिव्यक्ति संक्षेप में की जा सकती है और जिसे समझने में भी आसानी हो जाती है।

इस अध्ययन में हमने इस गणितीय पद्धति से सभी भौतिक राशियों को समझाने का प्रयास किया है। हाँ, मन तथा आत्मा जैसी पराभौतिकी या संज्ञानात्मक राशियों का विवेचन हमने यहाँ नहीं किया है। जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, हमने इन दो राशियों पर हमारी अन्य प्रसिद्ध पुस्तक Vaisheshikashastram : A Treatise on Physical and Cognitive Sciences में किया है। इस सब विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि वैशेषिक शास्त्र आश्चर्यजनक रूप से भौतिक शास्त्र की पुस्तक है।

वैशेषिक : भौतिकी का नया क्षितिज

भौतिकी तथा पराभौतिकी राशियों के शास्त्र के रूप में वैशेषिक शास्त्र के एक सूत्र में अग्रलिखित विवेचन है : द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय, इन छह पदार्थों या राशियों के बीच विद्यमान साधर्म्य अर्थात् समानताओं तथा वैधर्म्य अर्थात् असमानताओं के सम्यक् अर्थात् वास्तविक ज्ञान से निश्चित कल्याण होता है। इसी निश्चित कल्याण (निःश्रेयस) को 'दुखनिवृत्ति' या 'अपवर्ग' कहा गया है। वह सम्यक् अर्थात् वास्तविक ज्ञान धर्म अर्थात् विशिष्ट वैश्विक व्यवस्था या राशियों के अलग-अलग गुणधर्म से उद्भूत होता है। सूत्र में यह भी कहा गया है कि मूल भौतिक राशियों का ज्ञान मूल पराभौतिक राशियों—आत्मा तथा मन के ज्ञान का कारण है। वैशेषिककार ने आगे यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि आत्मज्ञान से तथा आत्यंतिक दुख की समाप्ति के निदान से मोक्ष प्राप्ति होती है। यह आत्मज्ञान तथा आत्यंतिक दुख की समाप्ति का निदान भौतिक तथा पराभौतिक पदार्थों या द्रव्यों के ज्ञान से ही हो सकता है। यद्यपि अन्य भारतीय दर्शनशास्त्रों की तरह ही वैशेषिकशास्त्र में भी मोक्ष को ही मानव-जीवन का अंतिम लक्ष्य माना गया है, परंतु इसमें आत्मज्ञान के लिए भौतिक पदार्थों के ज्ञान की आवश्यकता पर जिस तरह से जोर दिया गया है, वह अनूठा है, बेजोड़ है, अन्य किसी भी प्रमुख भारतीय दर्शन शास्त्रों में यह देखने को नहीं मिलता। हम लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि आत्मा तथा मन जैसी मूलभूत इकाइयों के अज्ञात रहस्यों पर से पर्दा हटाने के काम में वैशेषिक शास्त्र पाश्चात्य विज्ञानों की तुलना में अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है।

वैशेषिक की गणितीय व्याख्या : भौतिक शास्त्र

वैशेषिक शास्त्र में उल्लिखित सभी तत्वों, अवधारणाओं, पदार्थों या द्रव्यों पर इस पुस्तक में संक्षेप में किंतु समुचित रूप से गणितीय पद्धति से विचार-विमर्श किया गया है। हाँ, आत्मा और मन जैसी संज्ञानात्मक या आध्यात्मिक राशियों पर इस पुस्तक में विचार नहीं किया गया है। जहाँ तक मूलभूत अवधारणाओं, शब्दावली तथा उनके समानार्थी शब्दों का संबंध है, दोनों ही, वैशेषिक शास्त्र तथा भौतिक शास्त्र में, कोई अंतर नहीं है। दोनों में केवल एक ही अंतर है कि वैशेषिक शास्त्र में नियमों तथा प्रमेयों को गणितीय रूप में नहीं रखा गया है और इसका कारण संभवतः यह रहा होगा कि वह आधुनिक भौतिक शास्त्र के रूप में विकसित नहीं हो पाया था। यहाँ यह कहना अयथार्थ नहीं होगा कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में सामान्यतः यह कमी रही है कि उसमें अवधारणाओं तथा सिद्धांतों को गणितीय प्रमेयों के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। इयत्ता अर्थात् किसी भी वस्तु की नापतौल करके उसका निश्चित प्रमाण या मात्रा के बारे में सोच लगभग नहीं के बराबर थी। यदि वैशेषिक शास्त्र में ऐसा किया गया होता तो यह निश्चित रूप से आज के

भौतिक शास्त्र से भिन्न विषय नहीं समझा गया होता। हमारा प्रयास यह रहा है कि आधुनिक भौतिकी के सिद्धांतों का संदर्भ लेते हुए वैशेषिक शास्त्र की अवधारणाओं और सिद्धांतों को गणितीय भाषा में प्रस्तुत किया जाए। पूरे वैशेषिक शास्त्र की इस पद्धति से मीमांसा की जाए तो यह आधुनिक भौतिक शास्त्र से अलग कोई कृति नहीं रह जाती।

इस संदर्भ में, वात्स्यायन के न्याय भाष्य का एक उद्धरण महत्वपूर्ण है। यह उद्धरण वैशेषिक शास्त्र के संदर्भ में भी सुसंगत है। भौतिक शास्त्र मूल पदार्थों या द्रव्यों से संबंधित विज्ञान है, अतः आत्मा और मन को छोड़कर अन्य सभी द्रव्यों या राशियों पर विचार-विमर्श यहाँ किया गया है। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि इसी पद्धति से पराभौतिक द्रव्यों अर्थात् आत्मा और मन पर भी विचार-विमर्श संभव है। इसके लिए जरूरी यह होगा कि इन दोनों द्रव्यों को भी जीव विज्ञान तथा परा-मनोविज्ञान के विचार क्षेत्र में लाया जाए, अर्थात् इनका विज्ञानसम्मत विश्लेषण करने के लिए परा-मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इनकी मीमांसा की जाए। ऐसा इसलिए करना जरूरी है क्योंकि आत्मा और मन का ज्ञान, वैशेषिक शास्त्र के अनुसार, भौतिक राशियों के ज्ञान के बाद ही हो सकता है, और इस संदर्भ में यह मानना होगा कि ये दोनों ही द्रव्य भौतिक राशियाँ ही हैं।

वैशेषिक शास्त्र में भौतिक पदार्थों को दो श्रेणियों में रखा गया है— 1. सत्ताजातीय अर्थात् जिनका अस्तित्व वास्तव में है, 2. न्यायशास्त्रीय अर्थात् जिनका अस्तित्व तर्क के आधार पर सिद्ध किया जाता है। यह वर्गीकरण भौतिक राशियों के आधार तथा आधेय के सिद्धांत की बुनियाद पर किया गया है। यहाँ 'आधार' शब्द का अर्थ है जिसकी स्वतंत्र रूप से सत्ता है तथा 'आधेय' का अर्थ है दूसरे पर निर्भर! सत्ताजातीय भौतिक पदार्थ हैं—द्रव्य, गुण तथा कर्म एवं न्यायशास्त्रीय भौतिक पदार्थ हैं—सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव! यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि चौथे न्यायशास्त्रीय पदार्थ या द्रव्य 'अभाव' का उल्लेख वैशेषिक सूत्रकार ने तो नहीं किया, परंतु सूत्रों के 'पदार्थ धर्म संग्रह' जैसे भाष्यों तथा टीकाओं में 'अभाव' द्रव्य पर विचार किया गया है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भाष्यकारों तथा टीकाकारों का यह विश्वास था कि सूत्रकार ने 'अभाव' का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं किया है, परंतु इसको मानने में उन्हें आपत्ति नहीं है।

यह महत्वपूर्ण है कि भौतिक शास्त्र में भी राशियों या द्रव्यों का इसी तरह का वर्गीकरण है। एक बहुत ही खास बात ध्यान में रखने की यह है कि सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव का उल्लेख गणितीय संबंध के माध्यम से एक साथ किया गया है, जबकि मूल भौतिक राशियाँ (Basic quantities) हैं : द्रव्य (बुनियादी भौतिक राशियाँ या पदार्थ), गुण (Property) और कर्म (Motion)।

यह सच है कि प्राचीन भारत में, जब दार्शनिक विचारों का विकास हो रहा था, तब गणित के सभी आवश्यक साधन/उपकरण उपलब्ध थे, पर ऐसा लगता है कि किसी भी दार्शनिक चिंतक ने भौतिक जगत् से संबद्ध सिद्धांतों तथा विचारों को गणितीय या प्रमुख रूप से बीजगणितीय भाषा में अभिव्यक्त करने का प्रयास नहीं किया। इन गणितीय साधनों की न तो कोई छानबीन की गई और न ही उनका उपयोग किया गया। यदि इस गणितीय पद्धति का उपयोग पहले किया गया होता तो पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने पिछली तीन शताब्दियों में जो ज्ञान एक विशिष्ट पद्धति के तहत हासिल किया, वह मनुष्य जाति को आज से डेढ़ हजार साल पहले ही उपलब्ध हो गया होता।

ज्योतिष (Astronomy) : खगोल विज्ञान

प्राचीन भारत में खगोल विज्ञान अपने चरम उत्कर्ष पर था, यह इस बात का प्रमाण है कि उस समय गणित अत्यंत विकसित अवस्था में रहा होगा और ज्योतिषियों तथा खगोलशास्त्रियों ने उस गणित की सहायता से ग्रहों की गति आदि का समीचीन वर्णन किया। इस कार्य में उन्होंने उस समय उपलब्ध भौतिक राशियों के ज्ञान का उपयोग भी किया। समग्र सृष्टि के पूरे कालखंड की गणना ज्योतिषियों ने इस पूर्व धारणा के आधार पर की कि प्रारंभ में ग्रह-नक्षत्रों की जो अवस्थिति सृष्टि के प्रारंभ में रही, वही अवस्थिति महाप्रलय के समय में भी होगी। इस चक्र की समय-सीमा ही सृष्टि प्रलय की समय-सीमा रहेगी। सूर्य सिद्धांत के ज्योतिषोपनिषद् जैसे अध्याय तथा ज्योतिष के अन्य ग्रंथों से इस बात का पता चलता है कि इन्हें भारतीय दर्शन पर काफी हद तक निर्भर रहना पड़ा है।

उल्लिखित तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि खगोल विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो पूर्ण रूप से दर्शन तथा गणित पर आधारित है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो जबकि भौतिक शास्त्र में छोटी वस्तुओं की गति तथा उनके संस्कारों के बारे में खोजबीन और अध्ययन हम प्रयोगशालाओं में करते हैं, खगोल विज्ञान में हम सूर्य तथा ग्रहों जैसी विशाल वस्तुओं के बारे में विचार करते हैं और उसका प्रयोग तथा अध्ययन ब्रह्मांड जैसी प्रकृति की प्रयोगशाला में किया जाता है। यह स्पष्ट है कि खगोल शास्त्र व्यावहारिक विज्ञान है—भौतिक शास्त्र अथवा दर्शन शास्त्र की एक शाखा। यह भी कहा जा सकता है कि भौतिक शास्त्र दर्शन एवं विज्ञान की परिणति है। इस तरह से दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं।

लेखक आशा करते हैं कि वैशेषिक शास्त्र एवं भौतिक शास्त्र के इस सम्मिश्र प्रतिपादन में दोनों ही शास्त्रों की अपनी अलग पहचान तो उभरेगी ही, साथ-ही-साथ दोनों के अचूक प्रतिपादन साम्य का आनंद भी वाचक उठा सकेंगे।

(नारायण गोपाल डोंगरे और शंकर गोपाल नेने द्वारा लिखित और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित पुस्तक 'प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में भौतिकशास्त्र' से साभार)

पारंपरिक जलस्रोत

संकट की घड़ी और लोकविज्ञानियों की स्मृति

पारंपरिक जलस्रोत यानी जलसंग्रह की वह विधि है जो प्रकृतिसम्मत है और समाज को पानीदार बनाए रखने में भरपूर समर्थ है। इस परिभाषा में कुएँ, तालाब, पोखर, बावड़ियाँ, नौले, कुहल, नदी, नहर और झील आदि शामिल हैं। जलस्रोतों को बनाने और बचाने की जो हुनरमंदी लोक क्षेत्रों में विद्यमान रही है, वह नगरीय लोगों के लिए आश्चर्य और उपेक्षा का विषय रहा है। अब न केवल नगर, बल्कि देहातों में भी पारंपरिक जलस्रोतों की स्थिति बेहद चिंताजनक है। पारंपरिक जलस्रोतों को बनाने और बचाने वाले लोक विज्ञानियों का तो मानो अकाल पड़ा हुआ है।

दरअसल, पारंपरिक जलस्रोतों की उपेक्षा का आलम यह है कि आज की तो छोड़ ही दीजिए, दैनिक भास्कर समाचार पत्र में चार वर्ष पूर्व यानी वर्ष 2019 की एक रिपोर्ट से जलस्रोतों की भयावहता का अंदाजा लगाया जा सकता है। रिपोर्ट के मुताबिक, देशभर में पिछले 10 सालों में करीब 30 फीसदी नदियाँ सूख चुकी हैं। वहीं पिछले 70 सालों में 30 लाख में से 20 लाख तालाब, कुएँ, पोखर, झील आदि पूरी तरह खत्म हो चुके हैं। ग्राउंड वाटर (भूजल) की स्थिति भी बेहद खराब है। देश के कई राज्यों में कुछ जगह 40 मीटर तक भूजल स्तर नीचे जा चुका है। सरकार के आँकड़ों के हिसाब से पूरे राँची जिले में करीब 900 तालाब हुआ करते थे, जिसमें अब 280 ही बचे हैं। इसी प्रकार पूरे राज्य में करीब 10 हजार तालाब हुआ करते थे, जिसमें 7,860 तालाब ही बचे हैं। नीति आयोग के अनुसार, सन् 2030 तक देश के 40 प्रतिशत लोगों की पहुँच पीने के पानी तक नहीं होगी। पत्रकार और पर्यावरण चिंतक के रूप में ख्यात लेखक पंकज चतुर्वेदी, अपनी पुस्तक 'दफ़न होते दरिया' में पारंपरिक जलस्रोतों, खासकर तालाबों के नष्ट होने की कहानी बड़ी ही रोचकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। यह पुस्तक शोधपरक दृष्टि का परिचायक है। बकौल लेखक, 'देश के कुछ प्रमुख तालाबों पर मेरी पुस्तक 'दफ़न होते दरिया' अब पेपरबैक में आ गई है। प्रकाशक ने मेरे अनुरोध पर इसकी कीमत भी बेहद वाजिब रखी है, मात्र रु. 195/-। इस पुस्तक में कश्मीर से लेकर मणिपुर व कन्याकुमारी से लेकर दिल्ली तक के तालाबों की दिशा व दशा पर मेरा शोध है, लगभग साढ़े तीन साल लगे थे इसे पूरा करने में।'

दैनिक भास्कर की ही ख़बर का हवाला है कि उत्तर प्रदेश में 1 लाख 77 हजार कुएँ हैं, जबकि केवल पिछले पाँच साल में 77 हजार कुएँ कम हुए हैं। सिंचाई विभाग

डॉ. धीरेंद्र प्रताप सिंह

जन्म : 03 जून, 1990, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : एम.फिल., डी.फिल.। युवा अध्येता हैं, वर्तमान में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पोस्ट डॉक्टरेट रिसर्च कर रहे हैं।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कविताएँ प्रकाशित। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से तीन अनूदित पुस्तक और साहित्य भंडार तथा लोकभारती प्रकाशन से संपादित पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल— 9415772386

ईमेल— academicdhirendra@gmail.com

के आँकड़ों के अनुसार कुल तालाब/पोखरों की संख्या 24,354 है, जिसमें 23,309 तालाब/पोखर भरे गए हैं। जबकि पिछले पाँच साल में 1045 तालाब कम हुए हैं। कमोबेश भारत के लगभग प्रत्येक राज्य में जलस्रोतों खासकर पारंपरिक जलस्रोतों की यही स्थिति है। राजस्थान में तालाब, बावड़ियाँ, सरोवर आदि पारंपरिक जलस्रोत के सबसे बड़े केंद्र हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार, राजस्थान के शहरी इलाके में तालाब और बावड़ियों की संख्या 772 है। इनमें से 443 में तो पानी है, जबकि शेष 329 बावड़ियाँ, तालाब सूख चुके हैं या इन पर अतिक्रमण हो चुका है। पारंपरिक जलस्रोतों में तालाबों की भूमिका बड़ी है। अनुपम मिश्र लिखते हैं, '18वीं और 19वीं सदी के अंत तक भी जगह-जगह पर तालाब बन रहे थे। लेकिन फिर बनाने वाले लोग धीरे-धीरे कम होते गए। गिनने वाले कुछ जरूर आ गए, पर जितना बड़ा काम था, उस हिसाब से गिनने वाले बहुत ही कम थे और कमजोर भी। इसलिए ठीक गिनती भी कभी हो नहीं पाई। धीरे-धीरे टुकड़ों में तालाब गिने गए, पर सब टुकड़ों का कुल मेल कभी बिठाया नहीं गया, लेकिन इन टुकड़ों की झिलमिलाहट पूरे समग्र चित्र की चमक दिखा सकती है।'

" भारत का पहला आईआईटी संस्थान रुड़की में यूँ ही नहीं बना था। अकाल पड़ने पर उस इलाके के अनपढ़ कहे जाने वाले लोक शिल्पियों ने गंगा से नहर निकालकर तत्कालीन अंग्रेज अधिकारी जेम्स थॉमसन को बेहद प्रभावित कर दिया था। इस तरह उन अनपढ़ कहे जाने वाले लोक शिल्पियों के ज्ञान और कार्य से प्रभावित होकर जेम्स थॉमसन ने अपने प्रस्ताव और सुझाव से देश का पहला इंजीनियरिंग कॉलेज रुड़की में खुलवाया। "

तालाब के अलावा पारंपरिक जलस्रोतों में खड़ीन, टांका, नाड़ी, वापी (बावड़ी) आदि का उल्लेख इसलिए आवश्यक है क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर इसकी संरचना और प्रविधि से तमाम लोग अपरिचित हैं। जल संरक्षण और उस जल को कृषि उपयोग में लाने के लिए खड़ीन का निर्माण किया जाता है। खड़ीन निर्माण एक विशेष प्रकार की तकनीक है। इसका ज्यादातर प्रयोग राजस्थान में होता है। इंडिया वाटर पोर्टल से प्राप्त विवरण के अनुसार, खड़ीन मिट्टी का एक बाँध है जो किसी ढलान वाली जगह के नीचे बनाया जाता है जिससे ढलान पर गिरकर नीचे आने (बहने) वाला पानी रुक सके। यह ढलान वाली दिशा को खुला छोड़कर बाकी तीन दिशाओं को घेरती है। खड़ीन एक अर्द्धचंद्राकारनुमा कम ऊँचाई (चार फुट से पाँच फुट) वाला मिट्टी का एक बाँध होता है। यह ढाल की दिशा के विपरीत बनाया जाता है, जिसका एक छोर वर्षाजल प्राप्त करने के लिए खुला रहता है। ख़ासकर राजस्थान में बावड़ी का महत्व प्राचीन है। हड़प्पाकाल में बावड़ी का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि बावड़ी का जल लवणीय नहीं होता है क्योंकि इनका निर्माण बड़े ही वैज्ञानिक तरीके से किया जाता है।

इसी कड़ी में टांका का नाम आता है। टांका एक परंपरागत जल संग्रहण तकनीक है, जिसमें मूलतः वर्षाजल संग्रहण किया जाता है। यह भूमिगत तथा ऊपर से ढका हुआ टैंक (पक्का कुंड) है, जो सामान्यतः गोल या बेलनाकार होता है। इस जल का उपयोग पीने, घरेलू कार्यों व पालतू पशुओं को पिलाने के लिए किया जाता है। टांके थार मरुस्थल में बहुतायत संख्या में पाए जाते हैं। पक्के टांकों के जरिए वर्षाजल को शुद्ध व सुरक्षित रखा जा सकता है। इसमें कम पानी वाले क्षेत्रों में अधिक समय तक पीने का पानी उपलब्ध रहता है। वहीं बेरी की संरचना इस प्रकार की होती है कि ये उथले रिसाव के कुएँ होते हैं जो ऊपर से अत्यंत सँकरे होते हैं व आधार चौड़ा होता है। इन कुओं के विस्तृत जलग्रहण क्षेत्र से वर्षाजल इकट्ठा होता है, जबकि नाड़ी एक प्रकार का पोखर होता है, जिसमें वर्षाजल संचित होता है। इसका जलग्रहण क्षेत्र विशिष्ट प्रकार का नहीं होता है। राजस्थान में सर्वप्रथम पक्की नाड़ी के निर्माण का विवरण सन् 1520 में मिलता है, जब राव जोधाजी ने जोधपुर के निकट एक नाड़ी बनवाई थी। पश्चिमी राजस्थान में लगभग प्रत्येक गाँव में कम-से-कम एक नाड़ी अवश्य मिलती है। नाड़ी बनवाते समय वर्षा के पानी की मात्रा एवं जलग्रहण क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही जगह का चुनाव करते हैं। रेतीले मैदानी क्षेत्रों में नाड़ियाँ तीन से 12 मीटर तक गहरी होती हैं। इनका जलग्रहण क्षेत्र (आगोर) भी बड़ा होता है।

फिलहाल सवाल इस बात का है कि तालाब, बावड़ी, कुएँ आदि बनाने और बचाने वाले कौन लोग थे और उन्हें कहा क्या-क्या जाता था। गांधीवादी चिंतक और लोकजीवन के बड़े लेखक अनुपम मिश्र की पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' तो बार-बार पढ़े जाने की माँग करती है। इस किताब से गुजरने पर उन लोक विज्ञानियों से आप परिचित होते हैं, जिन्होंने किसी इंजीनियरिंग कॉलेज से नहीं, बल्कि लोक विवेक से इतने टिकाऊ और मजबूत जलस्रोत तैयार किए कि वह गहन शोध का विषय है। भारत का पहला आईआईटी संस्थान रुड़की में यूँ ही नहीं बना था। अकाल पड़ने पर उस इलाके के अनपढ़ कहे जाने वाले लोक शिल्पियों ने गंगा से नहर निकालकर तत्कालीन अंग्रेज अधिकारी जेम्स थॉमसन को बेहद प्रभावित कर दिया था। इस तरह उन अनपढ़ कहे जाने वाले लोक शिल्पियों के ज्ञान और कार्य से प्रभावित होकर जेम्स थॉमसन ने अपने प्रस्ताव और सुझाव से देश का पहला इंजीनियरिंग कॉलेज रुड़की में खुलवाया।

समकालीन दौर में जिस तरह से कृत्रिम और यांत्रिक ढंग से भूजल का तीव्र गति से दोहन किया जा रहा है और परंपरागत जलस्रोत संकट में आ गए हैं, ऐसे में पारंपरिक जलस्रोतों के शिल्पी आज पुराकालीन ही कहे जाएँगे। ऐसे तमाम शिल्पी अनाम हैं। 'आज भी खरे हैं तालाब' पुस्तक के लेखक बकौल अनुपम मिश्र,

'कौन थे अनाम लोग? सैकड़ों, हजारों तालाब अचानक शून्य से प्रकट नहीं हुए थे। इनके पीछे एक इकाई थी बनवाने वालों की, तो दहाई थी बनाने वालों की। यह इकाई, दहाई मिलकर सैकड़ा, हजार बनती थी, लेकिन पिछले 200 वर्षों में नए किस्म की थोड़ी-सी पढ़ाई पढ़ गए समाज ने इस इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार को शून्य ही बना दिया।'

तालाब निर्माण के शिल्पियों में एक नाम बेहद प्रचलित और सम्मानित रहा है, 'गजधर'। 'गजधर' तालाब बनाने वालों को कहा जाता है। 'सिलावटा' या 'सिलावट' का भी कार्य गजधरों की ही तरह था। कहीं-कहीं इन्हें अलग माना जाता रहा है और कहीं सिलवटों के नायक 'गजधर' कहलाते। दक्षिण भारत में गंगा जी जो 'गैंगजी' कहलाते, उनके बारे में अनुपम मिश्र बड़ी रोचक जानकारी देते हैं, 'टूटी चप्पल पहने गैंगजी सुबह से शाम तक इन तालाबों के चक्कर लगाते थे। नहाने वाले घाटों पर, पानी लेने वाले घाटों पर कोई गंदगी फैलाता दिखे तो उसे पिता जैसी डाँट पिलाते थे। कभी वे पाल का तो कभी नेष्टा का निरीक्षण करते। कहाँ, किस तालाब में कैसी मरम्मत चाहिए, इसकी मन-ही-मन सूची बनाते। इन तालाबों पर आने वाले बच्चों के साथ खुद खेलते और उन्हें तरह-तरह के खेल खिलाते। शहर को तीन तरफ से घेरे खड़े तालाबों का एक चक्कर लगाने में कोई तीन घंटे लगते हैं। गैंगजी कभी पहले तालाब पर दिखते तो कभी आखिरी पर, कभी सुबह यहाँ मिलते तो दोपहर वहाँ और शाम न जाने कहाँ। गैंगजी अपने आप तालाबों के रखवाले बन गए थे।'

अनुपम मिश्र जी बताते हैं, 'नए लोग जैसे तालाबों को भूलते गए, वैसे ही उनको बनाने वालों को भी। भूले-बिसरे लोगों की सूची में दुसाध, नौनिया, गोंड, परधान, कोल, ढीमर, ढींवर, भेई भी आते हैं। एक समय था जब ये तालाब के अच्छे जानकर माने जाते थे। आज इनकी उस भूमिका को समझने के विवरण भी हम खो बैठे हैं। 'कोरी' या 'कोली' जाति ने भी तालाबों का बड़ा काम किया था। सचमुच लौह पुरुष थे 'अगरिया'। यह जाति लोहे के काम के कारण जानी जाती थी। पर कहीं-कहीं अगरिया तालाब भी बनाते थे। तालाब खोदने के औजार—गेंती, फावड़ा, बेल, मेटाक, तसले या तगाड़ी बनाने वाले लोग उन औजारों को चलाने में भी किसी से पीछे नहीं थे। 'बेल' से ही 'बेलदार' शब्द बना है। माली समाज और इस काम में लगी परिहार जाति का भी तालाब बनाने में, तालाब बनने पर उसमें कमल, कुमुदिनी लगाने में योगदान रहता था। ओढ़िया, ओढ़ही, होरही, ओड़, औंड़—जैसे-जैसे जगह बदली, वैसे-वैसे इनका नाम बदलता था, पर काम एक ही था, दिन-रात तालाब और कुएँ बनाना। वह भी इतने कि गिनना संभव न हो। ऐसे लोगों के लिए ही कहावत बनी थी कि 'ओड़ हर रोज नए कुएँ से पानी पीते हैं।' महाराष्ट्र के नासिक क्षेत्र में कोहलियों के हाथों इतने बंधान और तालाब बने थे कि इस हिस्से पर अकाल की छाया नहीं पड़ती थी।'

आगे लिखते हैं, 'अपने पूरे शरीर पर राम-नाम का गुदना गुदवाने और राम-नाम की चादर ओढ़ने वाले छत्तीसगढ़ के 'रामनामी' तालाबों के अच्छे जानकार थे। मिट्टी का काम राम का ही नाम था इनके लिए। रायपुर, बिलासपुर और रायगढ़ जिलों में फैले इस संप्रदाय के लोग छत्तीसगढ़ क्षेत्र में घूम-घूमकर तालाब खोदते रहे हैं। संभवतः इस घूमने के कारण ही इन्हें बंजारा भी मान लिया गया था। छत्तीसगढ़ में कई गाँवों में लोग यह कहते हुए मिल जाएँगे कि उनका तालाब बंजारों ने बनाया था। रामनामी परिवारों में हिंदू होते हुए भी अंतिम संस्कार में अग्नि नहीं दी जाती थी, मिट्टी में दफनाया जाता था, क्योंकि उनके लिए मिट्टी से बड़ा और कुछ नहीं। जीवन-भर राम का नाम लेकर तालाब का काम करने वाले के लिए जीवन के पूर्णविराम की इससे पवित्र और कौन-सी रीति होगी? आज ये सब नाम अनाम हो गए हैं। उनके नामों का स्मरण करने की 'गजधर' से लेकर 'रामनामी' तक की नाम-माला अधूरी ही है। सब जगह तालाब बनते थे और सब जगह उन्हें बनाने वाले लोग थे।'

मौजूदा परिदृश्य में जिस तरह से जलसंकट बढ़ता जा रहा है, उसमें परंपरागत जलस्रोतों की भूमिका केंद्रीय है। जो जलस्रोत नागरिक बोध और उनके अनिवार्य जिम्मेदारी का हिस्सा है, वह राजनीतिक मुद्दा बन रहा है। राजनीतिक नारों और धार्मिक क्रियाकलापों में जिस तरह पारंपरिक जलस्रोत किसी ख़ास अवसर तक सीमित हो रहे हैं, वह किसी भी तरह मानव समाज के हित में नहीं है। आज जरूरत उन अनाम, ज्ञात और अज्ञात लोक शिल्पियों की खोज और उनके कार्य को सामने लाने की है, जिनसे हमारा समाज पानीदार बना रहे।

बस्तर में लोक ज्योतिष द्वारा वर्षा का अनुमान

बस्तर अंचल अपनी आदिवासी एवं लोक कला-संस्कृति के लिए आरंभ से ही चर्चित रहा है। यह अलग बात है कि चर्चा का मुख्य बिंदु इस अंचल के मुरिया (गोंड) समुदाय में प्रचलित 'घोटुल' संस्था रही है और अब, 'शाल वनों का द्वीप' या 'शांति का टापू' नाम से अभिहित किया जाता रहा यह अंचल नक्सलवादी गतिविधियों के कारण सुर्खियों में रहता है। आए दिन नक्सली गतिविधियों से दो-चार होना, उनकी खबरें पढ़ना-सुनना और उसका दंश भोगना ही बस्तरवासियों के भाग्य में लिखा है। छत्तीसगढ़ के 39,117 वर्ग किलोमीटर भू-भाग में फैले इस अंचल की कुल जनसंख्या 2011 की जनगणना के मुताबिक 30,90,828 है, जबकि इस कुल आबादी में से आदिम जनजातियों की संख्या 20,69,155 है, यानी कुल जनसंख्या का 66.94 प्रतिशत।

यहाँ के वनवासियों का जीवन मुख्यतः वनों पर आश्रित रहा है। वे वनोपज तथा वन्य प्राणियों का आखेट कर अपना उदर-पोषण करते रहे हैं। धीरे-धीरे कृषि-कार्य की ओर प्रवृत्त हुए और आरंभिक चरण में कोदो-कुटकी, मँडिया, कुल्थी आदि मोटे अन्न की उपज ली और फिर बाद में धान तक आ पहुँचे। कोदो-कुटकी से धान तक की उपज-यात्रा का बड़ा ही रोचक वर्णन यहाँ की गुरुमाएँ 'लछमी जगार' नामक लोक गाथा में करती हैं, जो धान्य देवी की अद्भुत महागाथा है। आज धान ही बस्तर अंचल की मुख्य उपज है। इस मुख्य फसल की बोआई कब की जाए कि उसकी उपज बहुत अच्छी हो; इसके लिए कृषक को वर्षा की स्थिति जानना अत्यंत आवश्यक होता है। कारण, कृषि-कार्य में तो पानी ही प्रमुख घटक है। बस्तर का कृषक इस स्थिति को जानने के लिए अपने लोक ज्योतिष संबंधी पारंपरिक-मौखिक ज्ञान का सहारा लेता रहा है। उसके इस लोक ज्योतिष में सहायक होते हैं—विभिन्न पेड़-पौधे, जीव-जंतु तथा तारे आदि। बस्तर का प्रायः प्रत्येक ग्रामीण इन पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं तथा तारों आदि की सहायता से वर्षा का अनुमान किस तरह लगाता है और उसी के आधार पर खेती का काम करता है; इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

अ. पेड़-पौधों द्वारा वर्षा का अनुमान

फरसा : फरसा यानी पलाश के फल में यदि एक बीज फल के ऊपरी हिस्से में, एक मध्य

दिवंगत– हरिहर वैष्णव

कृति : संपूर्ण लेखन-कर्म बस्तर पर केंद्रित। कुल 25 पुस्तकें प्रकाशित। कुछ प्रकाशनाधीन। हिंदी के साथ-साथ बस्तर की भाषाओं हल्बी, भतरी, बस्तरी और छत्तीसगढ़ी में भी समान लेखन। सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के तहत विभिन्न देशों में प्रवास—ऑस्ट्रेलिया-1991, स्विट्ज़रलैंड-2000 और इटली-2002। बस्तर की भाषा हल्बी में 5 एनीमेशन फिल्मों का स्कॉटलैंड की संस्था 'वेस्ट हाईलैंड एनीमेशन' के साथ मिलकर निर्माण।

पुरस्कार : प्रमुख सम्मान—छत्तीसगढ़ हिंदी साहित्य परिषद् : 'उमेश शर्मा साहित्य सम्मान, 2009', दुष्यंत कुमार स्मारक संग्रहालय : 'आंचलिक साहित्यकार सम्मान 2009', छत्तीसगढ़ राज्य अलंकरण 'पं. सुंदरलाल शर्मा साहित्य सम्मान 2015', 'वेरियर एल्विन प्रतिष्ठा अलंकरण 2015', साहित्य अकादेमी : 'भाषा सम्मान 2015'।

में और एक फल के निचले हिस्से में हो तो वर्षा ऋतु के चारों महीने पानी बराबर और अच्छा बरसता है। यदि फल के ऊपरी हिस्से में केवल एक ही बीज हो तो चौमासे के बीच में वर्षा अच्छी होगी और फल के निचले हिस्से में एक बीज हो तो अंत में वर्षा अच्छी होगी।

पिकड़ : जब पिकड़ यानी पीपल के वृक्ष में पत्ते निकलने लगते हैं तब किसी एक ओर की कुछ शाखाओं में पत्तों का निकलना बंद हो जाता है। वर्षा होने की संभावना होने पर ही उन शेष शाखाओं में पत्ते निकलते हैं। पत्तों के पकते-पकते ही उन्हीं शाखाओं की दिशा से वर्षा का आगमन होता है।

सरगी : सरगी यानी साल वृक्ष के पत्ते पतझड़ में पूरी तरह झड़कर समाप्त हो जाएँ और पूरे वृक्ष में नए पत्ते निकल आएँ तो वर्षा ऋतु के चारों महीने बराबर वर्षा होती है। किंतु यदि पत्ते रह-रह कर झड़ें, उनके झड़ने में विलंब हो और किसी भाग में नए पत्ते विलंब से निकलें तो वर्षा कम होने की पूरी संभावना बनी रहती है।

सतावर : सतावर या शतावरी के पौधे से भी वर्षा संबंधी जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। सतावर में जब फूल लगे हुए हों और पौधे के ऊपरी और निचले हिस्से में फूल लगे दिखें, किंतु बीच में फूल न लगे हों तो वर्षा ऋतु के प्रारंभ एवं अंत में वर्षा ठीक होगी, जबकि बीच में कम।

हर्रा : हर्रा या हरड़ के वृक्ष में लगे फल का ऊपरी भाग जब तोता द्वारा कुतरा हुआ दिखे तो बारिश वर्षा ऋतु के प्रारंभ में कम होती है, किंतु यदि फल के मध्य भाग में कुतरा दिखे तो वर्षा बीच में कम और निचले भाग में कुतरा हुआ दिखे तो ऋतु के अंत में कम होगी। इससे अलग हटकर यदि तोता द्वारा समूह में श्रावण मास में हर्रा के अनेक फल कुतरे जाएँ तो पाँच-छह दिनों तक वर्षा की भारी झड़ी लगना निश्चित होता है।

गरुड़ : कैक्टस प्रजाति के 'गरुड़' नामक इस पौधे की कली यदि घनी निकली हो तो बराबर वर्षा होगी, पतली हो तो पानी गिरेगा अवश्य, किंतु कम। गरुड़ में फूल खिल जाने का अर्थ है वर्षा होगी ही। यदि दो या तीन फूल अधखिले रह जाएँ तो वर्षा रह-रहकर और कम होगी, किंतु यदि पौधे के सभी ओर कली आ गई है और फूल खिल उठे हैं तो वर्षा सभी ओर और बराबर होगी।

महुआ : वैशाख महीने में महुआ वृक्ष के पत्तों का किनारा यदि हल्दी की तरह पीला और बीच में लाल हो तो वर्षा कम होगी। वृक्ष की चोटी पर पीलापन हो तो खूब वर्षा होगी जिससे पूरे खेत पानी से लबालब भर जाएँगे और बोआई बाधित होगी।

जामुन : जामुन वृक्ष में लगा हुआ फल जब अधपका अवस्था में हो तो धार भूमि में माई धान की बोआई खर्री पद्धति से की जाती है। कारण, फल के पूरा पकते ही पानी का गिरना निश्चित है। जामुन के फल पानी के ऊपर गिरें तो खेत में बियासी चला दी जाती है क्योंकि कुछ ही दिनों के बाद वर्षा होने की संभावना रहती है।

नीम : नीम वृक्ष का फल जब पकना प्रारंभ हो जाए तो खर्री पद्धति से की जाने वाली बोआई शुरू कर दी जाती है। फल पूरा पक कर गिर जाए तो पानी गिरना प्रारंभ हो जाता है। इसका अर्थ है मानसून सक्रिय हो गया है।

नागफनी : नागफनी का पौधा जब खिला हुआ दिखे और फूल का अग्रभाग उत्तर दिशा की ओर हो तो समझना चाहिए कि पानी शीघ्र गिरने वाला है।

कया : कया वृक्ष का पत्ता पूरा झड़ा हुआ दिखने पर खर्री बोआई प्रारंभ कर दी जाती है। पत्ता निकल रहा हो तो मस्का पद्धति से बोआई की जाती है। पत्ते पूर्ण रूप से हरे होने पर बियासी चलाया जाता है। पत्तों का निकलना वैशाख मास में प्रारंभ होता है।

पाँच फूल : यह फूल धीरे-धीरे झड़ता है। मई के प्रारंभ में और जून के अंत में निकलता है। फूल खिलने पर वर्षा आरंभ हो जाती है।

बोदर : इस वृक्ष में नीचे की ओर पत्ते निकलते हैं। पत्ते जब तीन-तीन इंच के हो जाएँ तो वर्षा के आगमन का अनुमान लगा कर बोआई आरंभ कर दी जाती है।

कोलियारी : माई कोलियारी वृक्ष में तीन बार पत्ते निकलते हैं। पहली बार वैशाख मास में फिर एक-एक सप्ताह के अंतराल में निकलने के बाद वर्षा का होना निश्चित हो जाता है।

भडरी : इस पौधे का फल जब गिरता है तो इससे वर्षा शीघ्र होने का संकेत मिलता है। इसका फल जून माह में पकता है।

डिमरा : अधिकतर नदी व नाले के किनारे यह वृक्ष पाया जाता है। इस वृक्ष में फूल मई में खिलना प्रारंभ होता है। फल लगते-लगते वर्षा आरंभ हो जाती है।

लिमऊ : नींबू के पत्ते जब कीचड़ से सने जैसी स्थिति में दाग़दार दिखें तो दो-तीन दिनों में वर्षा होने की संभावना होती है।

अमलतास : अमलतास का फल जब चूहे के पूँछ जैसा हो तो वर्षा प्रारंभ हो जाएगी।

कुमी : कुमी का फल जब पक कर गिर जाए तो वर्षा प्रारंभ होती है।

चिमरा : यह पौधा नदियों में पाया जाता है। यदि इसका फूल भूमि पर टिक जाए तो वर्षा प्रारंभ हो जाती है।

रामजाम : यह फल पक कर यदि पूरा समाप्त हो जाए तो वर्षा शुरू हो जाती है।

घास : जब पहला पानी गिरता है तो पुरानी घास में नई पत्तियाँ निकलती हैं। दुबारा पानी गिरने पर घास के बीज से अंकुरण होने पर वर्षा आरंभ होने का संकेत मिलता है।

ब. जीव-जंतुओं द्वारा वर्षा का अनुमान

कावरा : कावरा यानी कौआ जब घोंसला बना रहा होता है, तब घोंसले के लिए तिनका इकट्ठा करते समय यदि वह तिनके को बीच में पकड़ कर ले जा रहा हो तो पानी बराबर गिरेगा यानी समान वृष्टि होगी। किंतु यदि तिनके को किनारे से पकड़कर ले जा रहा हो तो यह खंड वृष्टि का संकेत माना जाता है।

पानी कावा : पानी कावा अर्थात् पानी कौआ यदि जेठ मास की समाप्ति पर उत्तर दिशा की ओर से उड़ता और शोर करता हुआ दक्षिण दिशा की ओर जाए तो समझा जाता है कि वर्षा होने में अधिक विलंब नहीं है। यह पक्षी यदि जून माह में किसी एक दिन मध्य रात्रि को 'कोक कर्र-कर्र' की आवाज करता हुआ आसमान में चारों दिशाओं के चक्कर लगाता है तो अति वर्षा होने की पूरी संभावना होती है। यह बोआई समाप्त होने के बाद लगातार वर्षा होने का संकेत है। यदि 'फुक्-फुक्' की आवाज करता हुआ चक्कर लगाए तो कम वर्षा होगी।

करेया नाँग : काला नाग रात को लावा की तरह आवाज निकालता है। बरसात के मौसम में यदि काला नाग तीन या चार रोज रात में इसी प्रकार से आवाज करे तो उतने दिन बरसात की झड़ी लगने वाली है। सावन और भादों मास में इसकी परीक्षा की जाती है।

लिटी चड़ई : नदी या तालाब के तट पर अकसर पाया जाने वाला 'लिटी चड़ई' नामक यह पक्षी अपनी पूँछ को हर समय ऊपर-नीचे करता रहता है। ऊपर-नीचे करते समय यदि पूँछ भूमि पर टिक जाए तो वर्षा शुरू हो जाती है।

गाय-बैला : गाय-बैला यानी गाय-बैल यदि बरसात के मौसम में खाँसते हैं तो पानी गिरने की पूरी संभावना होती है। इसी तरह जितनी रात वे खाँसते हैं उतने दिनों तक वर्षा की झड़ी लगने का निश्चय हो जाता है।

दारुभारा : इल्ली के समान एक कीट होता है जिसे 'दारुभारा' कहते हैं। यदि इस कीड़े के शरीर में लिपटा हुआ एक तिनका ज्यादा लंबा हो तो एक बार और दो तिनके लंबे हों तो दो बार बाढ़ आना निश्चित है।

चाटी : छोटी काली चींटी भी वर्षा का संकेत देती है। वर्षा के शुरुआती दौर में छोटी काली चींटियाँ झुंड के रूप में अचानक निकलकर अपने अंडे को मुँह में दबा कर चलती दिखें तो एक या दो दिन में वर्षा निश्चित है। चींटियों की चाल यदि तीव्र हो तो वर्षा भी तेज होगी। वर्षा के मौसम में यदि वर्षा नहीं हो रही हो और रुकी हुई हो तो भी इन चींटियों से वर्षा होने का संकेत मिलता है।

जोगनी किड़ा (जुगनू) : सावन के मौसम में जब वर्षा रुकी हुई हो और उस स्थिति में जब जुगनू रात को किसी पेड़ के निचले हिस्से में या भूमि के ऊपर विचरता हुआ दिखे और दो या चार दिनों बाद जुगनू समूह में वृक्ष के ऊपरी हिस्से में उड़ते दिखें तो अनुमान हो जाता है कि वर्षा शीघ्र होगी।

मंजुर : मई महीने में मयूर जोरों से चिल्लाता हो तो धूप निकलेगी और जोर से चिल्लाने के तीन-चार दिनों बाद हल्के राग में और धीमी आवाज करे तो वर्षा जोरों से होगी।

कुरवाँ : यदि कुरवाँ धीमी आवाज निकाले तो पानी जोरों का गिरता है और जोर से आवाज निकालने पर पानी देर से गिरता है।

मेंडका : वर्षा के मौसम में यदि मेढक 'टक्-टक्' की आवाज जोरों से करे तो समझना चाहिए कि तीन-चार दिनों तक आसमान खुला रहेगा। 'गल-गल' की आवाज करे तो भारी वर्षा होगी और 'पिक्-पोंक्' की आवाज करे तो टिप्-टाप् यानी बूँदा-बाँदी होगी।

करया चाटी (काली चींटी) : यदि काली चींटी अंडे को मुँह में दबाकर घने झुंड में चलती है तो वर्षा बराबर होगी, किंतु यदि अपने अंडे को मुँह में दबाकर पतले झुंड में चलती है तो वर्षा कम होगी। इसी तरह यदि बगैर अंडा दबाए या लिए खाली चलती हो तो उस वर्ष वर्षा नहीं होगी। इसी तरह यदि चींटी अंडे को मुँह में दबाकर किसी ऊँचे स्थान पर या पेड़ों पर चढ़े तो एक-दो दिनों में वर्षा होने की पूरी संभावना होती है।

झिंजरा किड़ा (झींगुर) : जून माह में जंगल में झींगुर बहुत ज्यादा आवाज करे तो वर्षा के मौसम में बहुत वर्षा होने का पता चलता है।

पंडकी : 'पँडकी' नामक पक्षी यदि जमीन पर अंडे देती है तो उस वर्ष पानी के साथ हवा भी तेज चलती है और ओले भी गिरते हैं।

बरहा (सूअर) : मादा सूअर प्रसव के समय या प्रसव के लिए घर बनाती हो और उसके द्वार का मुँह दक्षिण दिशा की ओर हो तो पानी बहुत गिरेगा। दूसरी दिशा की ओर द्वार का मुँह होने पर वर्षा कमजोर होगी।

कापू : इस पक्षी के अंडे यदि पास-पास हों तो पानी एक बार भरपूर गिरेगा। दूर-दूर होने पर धीरे-धीरे गिरेगा।

भेंगराज : भेंगराज पक्षी के बच्चे यदि उड़ जाएँ तो खेत में बियासी चला देना चाहिए क्योंकि दिन-रात वर्षा होने की संभावना बनी रहती है।

बछड़े/बछियों का जन्म : प्रत्येक गाँव में यदि शीत ऋतु से लेकर ग्रीष्म ऋतु तक बछड़े का जन्म अधिक संख्या में हो रहा हो तो सूखा होगा या पानी कम गिरेगा। यदि बछियों का जन्म अधिक संख्या में हो रहा हो तो वर्षा अधिक होगी।

कया या किया पक्षी : यह चिड़िया जुलाई माह में अंडे देती है। अंडे से चूजे निकलने के बाद उड़ने की अवस्था में काफी वर्षा होगी।

ओरमा (दीमक) : आम की गुठली और छींद के बीज पर दीमक लगता है। दीमक जब आम की गुठली एवं छींद के बीज को चरने के बाद छोड़ देता है तब वर्षा आने की संभावना रहती है।

खोक्सी मछरी : इस मछली के अंडे से बच्चे निकल गए हों तो वर्षा नजदीक है।

लोक्टी : यह एक प्रकार की मक्खी होती है तथा मधुमक्खी की प्रजाति की होती है। यह दीवार के भीतर या पेड़ों की खोह में शहद बनाती है। वर्षा में यदि विलंब हो तो शहद गोंद जैसा मोटा व लड्डू कड़ा होगा, किंतु यदि वर्षा में विलंब न हो तो शहद पतला और लड्डू गीला होगा।

मोंगरी मछरी (माँगुर मछली) : इसके अंडे देने के बाद जैसे-जैसे अंडे बढ़ते जाएँगे, वर्षा नजदीक आती जाएगी। अंडे से बच्चे निकलने पर वर्षा प्रारंभ हो जाती है।

चीफा मछली : इस मछली की दोनों अंडा-थैलियाँ समान आकार की हों तो वर्षा बराबर होगी। अंडा-थैलियाँ छोटी-बड़ी हों तो वर्षा भी कम-ज्यादा होगी।

बिल्ली : बिल्ली जितने बच्चे जनेगी, वर्षा भी उसी के आधार पर होगी। एक बच्चा हो तो वर्षा एक माह की होगी, दो बच्चे हों तो दो माह और तीन होने पर तीन माह तथा चार बच्चे हों तो चार माह वर्षा होगी।

स. अन्य स्रोतों द्वारा वर्षा का अनुमान

नाँगर तारा : वैशाख मास के अंत में जब नाँगर तारा अस्त होता है, उस वर्ष पर्याप्त वर्षा होने की पूरी संभावना होती है। इसीलिए वैशाख मास के अंत में नाँगर तारा का अस्त होना शुभ माना जाता है तथा उसके अस्त होने के दूसरे दिन बाद खर्री पद्धति से धान की बोआई प्रारंभ कर दी जाती है। ऐसा करने पर धान की फसल अच्छी होती है। इस संबंध में जनश्रुति है कि किसी गाँव में एक कृषक ने नाँगर के अस्त होने के दिन ही अपने तैयार खेत में हल चला दिया। उस कृषक के खेत में धान की बालियों की जगह सोने की बाली निकली दिखीं। इससे यह ज्ञात होता है कि इस मौसम में खर्री पद्धति से धान की बोआई करने पर स्वर्ण की तरह कीमती और अच्छी उपज हमें धान्य फसल के रूप में प्राप्त होगी। मान्यता के अनुसार, इसी दिन स्वर्ग में भगवान धान की बोआई आरंभ करते हैं।

अकतई त्यौहार (अक्षय तृतीया) : अकतई त्यौहार के दिन जलाशय के किनारे जाकर रीति अनुसार पूजा-अर्चना कर नई मिट्टी के घड़े में पानी लाते हैं और खेतों से मिट्टी के चार ढेले भी लाते हैं। ये दोनों चीजें देव-स्थान में रखी जाती हैं। मिट्टी के इन ढेलों को सावन, भादों, क्वाँर और कार्तिक मास के नाम से रखते हैं और इनके ऊपर पानी भरे घड़े को रखते हैं। एक सप्ताह बाद उसे देखते हैं। यदि मिट्टी के चारों ढेले पूरी तरह भीगे हुए हों तो वर्षा चारों महीने बराबर होगी और चारों में से कोई एक या दो ढेले सूखे हों तो उस मास में वर्षा नहीं होगी और यदि होगी भी तो कम।

जंगल : गोन्चा त्यौहार के बाद जंगल में पेड़ों के पत्ते काले दिखलाई पड़ें तो काफी वर्षा होने की संभावना रहती है।

शीतकाल : ठंड पड़ने की स्थिति से भी आने वाले वर्षा के मौसम की जानकारी मिलती है। वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद शीत ऋतु के प्रारंभिक मास कार्तिक एवं अगहन, पूस, माघ इन चारों महीनों में ठंड अच्छी पड़े तो वर्षा ऋतु में भी चारों मास बराबर और अच्छी वर्षा होगी। किंतु किसी महीने में ठंड कम पड़े तो उस क्रम में आने वाले महीने में वर्षा कम होगी।

नाँगर-फार : नाँगर के फार की मरम्मत करते वक्त लोहा-गू सरलता से उतरे तो समझें कि वर्षा होने को है।

मौसम के संबंध में बस्तर अंचल के ग्रामीण कृषक प्रायः बहुत से गाँवों में पेड़ों को अपना पंचांग मानते हैं। पेड़ों के आधार पर ही बोआई का कार्य प्रारंभ करते हैं। एक ऐसा इमली का पेड़ जिस पर कभी फल नहीं लगते, आस-पास के गाँवों के लोगों का पंचांग है। इसे 'नर इमली' कहते हैं। कृषक इस पेड़ को देखते रहते हैं। जब पानी गिरने का समय आ जाए तो इसके नए पत्ते निकलते हैं। इसे देखकर कृषक बोआई प्रारंभ कर देते हैं। पत्तों के कड़ा होते-होते वर्षा प्रारंभ हो जाती है।

इसी तरह कहीं-कहीं 'माछ' पेड़ में पत्ते निकलने की प्रतीक्षा की जाती है। इसमें पत्ते निकले और बोआई शुरू कर दी जाती है। किसी-किसी गाँव में गरुड़ वृक्ष उनका पंचांग होता है। 'आदन' वृक्ष के पत्ते निकलने पर भी बोआई करने का चलन है। कहीं पर जामुन वृक्ष भी गाँव का पंचांग होता है। जामुन वृक्ष कई गाँवों में बियासी या बिहड़ा का समय निर्देशित करता है। इसी प्रकार प्रायः प्रत्येक गाँव में कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं, जिनसे मानसून का संकेत मिलता है। इसी के आधार पर बस्तर अंचल में खेती का कार्य किया जाता है।

इनके अलावा व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर भी कई कृषक पानी का संकेत देते हैं। यदि पानी गिरने के आसार हों तो किसी विशेष व्यक्ति को बदन में काफी जोरों का दर्द होगा। यह दर्द पानी गिरने के साथ ही खत्म भी हो जाता है। कई लोगों का चिहला रोग बढ़ जाता है तथा खुजली बढ़ जाती है, इससे भी पानी गिरने की संभावना बढ़ जाती है। इसी तरह किसी के शरीर की बेंवची में यदि खुजली बढ़ जाए और उसमें से पानी रिसने लगे तो बरसात होने का संकेत देता है। बरसात होने के साथ ही उसकी खुजली ठीक हो जाती है। यदि किसी के खेत में बना तुम सूख रहा तो भी पानी गिरने की संभावना बलवती होती है। इसी तरह पानी गिरने के आसार होने पर कुछ लोगों को अधिक गरमी का अहसास होने लगता है। ऐसे लोगों में इस आलेख का लेखक भी शामिल है।

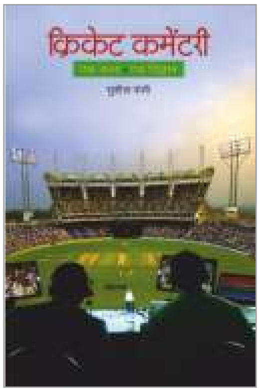

समीक्षक : **डॉ. गजेन्द्र कुमार मीणा**

लेखक : **सुशील दोशी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 108

मूल्य : रु. 160/-

क्रिकेट कमेंटरी : एक कला, एक विज्ञान

विश्व के कई देशों में क्रिकेट खेला जाता है। क्रिकेट की प्रसिद्धि जगजाहिर है। भारत में क्रिकेट का जुनून सिर चढ़कर बोलता है। आईपीएल से इसकी लोकप्रियता खूब बढ़ी है। क्रिकेट की अनेक प्रतियोगिताओं का टेलीविजन पर प्रसारण होता है। इसमें हिंदी कमेंटेटरों की जरूरत होती है। क्रिकेट के खिलाड़ियों के साथ अब कमेंटेटर भी पेशेवर होने लगे हैं। बाजारवाद ने इसे और नई ऊँचाई दी है और कमेंटेटरों के लिए रोजगार के नए क्षेत्र खोले हैं। ऐसे में क्रिकेट कमेंटरी का क्षेत्र पर्याप्त संभावना वाला है। लेकिन यह सीमाएँ ही कही जाएगी कि हिंदी में क्रिकेट कमेंटरी पर हमें बहुत ही कम साहित्य मिलता है। इस दिशा में क्रिकेट की कमेंटरी से पिछले पाँच दशक से जुड़े हुए और 'हिंदी कमेंटरी के जनक' कहे जाने वाले सुशील दोशी का नाम महत्वपूर्ण है। उनकी 'क्रिकेट कमेंटरी : एक कला एक विज्ञान' पुस्तक प्रकाशित हुई है जो क्रिकेट कमेंटरी की सैद्धांतिक और व्यावहारिक जानकारी देती है।

सुशील दोशी इस पुस्तक में क्रिकेट कमेंटरी कला के उद्‌भव और विकास का अवलोकन प्रस्तुत करते हैं। कमेंटरी का उद्‌भव कब हुआ और उसका विकास कैसे हुआ? पर चर्चा करते हैं। क्रिकेट कमेंटरी में कला और विज्ञान के सम्मिश्रण पर वह कहते हैं कि, 'दिल को छूने वाली कमेंटरी के लिए विज्ञान व कला का सही मेल-जोल जरूरी है। (भूमिका से) इस कला को विकसित करने के लिए आवश्यक गुण होने चाहिए जिससे एक अच्छा कमेंटेटर बना जा सकता है। सहज प्रतिभा के साथ अच्छे कमेंटेटर के गुणों का विकास किया जा सकता है। रेडियो और टेलीविजन की कमेंटरी में फर्क होता है। दोनों की अपनी-अपनी भाषा और शैली होती है। लेखक इसे रेखांकित करते हैं। क्रिकेट के ज्ञान के साथ तकनीकी जानकारी भी बहुत महत्वपूर्ण है। किसी कमेंटेटर की भाषा और शैली कितनी भी शानदार क्यों न हो, वह क्रिकेट के ज्ञान और तकनीक की जानकारी के बगैर इस भूमिका को ठीक से नहीं निभा सकता है। क्रिकेट कमेंटरी में आवाज, शैली और लहजे का विशेष महत्व है। भाषा का प्रवाह, शब्द का चयन, आवाज का उतार-चढ़ाव तथा उचित लहजे पर ही अच्छी कमेंटरी निर्भर करती है। कमेंटेटर की भाषा से ही श्रोताओं-दर्शकों के मानस पटल पर बिंब बनता है।

क्रिकेट की कमेंटरी किसी एक टीम के पक्ष से नहीं होती है। इसके लिए निष्पक्षता जरूरी है। कमेंटरी में यह कहना कि 'हमारी टीम बल्लेबाजी कर रही है' या 'हमारी टीम ने बढ़िया शुरुआत की है' वर्जित है। कमेंटेटर को अति आलोचना और अति प्रशंसा से बचने की नसीहत देते हुए लेखक इसका विश्लेषण करते हैं। इसमें संतुलन का बड़ा महत्व है। सुशील दोशी कहते हैं कि निंदक नियरे राखिए, जिससे लगातार कमेंटरी में सुधार होगा। क्रिकेट कमेंटरी के लिए प्रत्येक मैच और आजीवन तैयारी की जरूरत होती है। उसी से कमेंटेटर उत्तरोत्तर बेहतर कर सकता है। कमेंटरी करने से पहले क्या-क्या और कैसे-कैसे तैयारी करनी है? इसके लिए पूरे सैंतीस बिंदु बताए हैं। मानसिक तैयारी से लगाकर खाने-पीने की सावधानी तक के उल्लेख बड़े रोचक ढंग से लेखक ने किए हैं। कमेंटरी दिलचस्प होनी चाहिए। इसे दिलचस्प कैसे बनाएँ, इसके लिए सुझाव दिए हैं। कमेंटरी में तथ्यात्मकता, रोचकता और हास्यात्मकता होनी चाहिए, अन्यथा कमेंटरी नीरस हो जाएगी। साथ ही कमेंटरी में असत्य के लिए कोई जगह नहीं है।

भारत ही नहीं, विश्व में क्रिकेट की हिंदी कमेंटरी सुनी जाती है। इसलिए हिंदी कमेंटरी में रोजगार की अपार संभावनाएँ हैं। क्रिकेट में हिंदी कमेंटरी के लिए खिलाड़ियों का प्रवेश कितना प्रभावी है? इस पर भी सुशील दोशी विचार करते हैं और हिंदी कमेंटेटरों के कई रोचक किस्से उद्धृत करते हैं। आज कमेंटेटर बनने की होड़ लगी हुई है। बाजार में अच्छे कमेंटेटर की माँग है। ऐसे में पुस्तक का 'क्रिकेट कमेंटेटर कैसे बनें?' अध्याय दिशा-निर्देश करता है। पुस्तक का आखिरी अध्याय 'क्रिकेट कमेंटरी जगत के नींव के पत्थर' है, जिसमें एलन मैकगिलवरी, जॉन ऑलार्ट और ब्रायन जॉन्स्टन के कमेंटरी में योगदान पर चर्चा की है।

यह पुस्तक कुल सत्रह अध्याय में विभक्त है। इसमें क्रिकेट कमेंटरी से संबंधित कई रोचक प्रसंग पढ़ने को मिलेंगे। क्रिकेट कमेंटरी के इतिहास के तथ्य मिलेंगे। कमेंटरी की व्यावहारिक जानकारी मिलेगी क्योंकि सुशील दोशी ने इस पुस्तक में अपने लंबे अनुभवों और ज्ञान को साझा किया है। उनसे अकसर पूछे जाने वाले सवालों का रोचक ढंग से विश्लेषण किया है। जिन्हें क्रिकेट देखने-सुनने और क्रिकेट कमेंटरी कला में दिलचस्पी है या इस क्षेत्र में कदम रखना चाहते हैं तो यह पुस्तक महत्वपूर्ण जानकारी और मार्गदर्शन देती है।

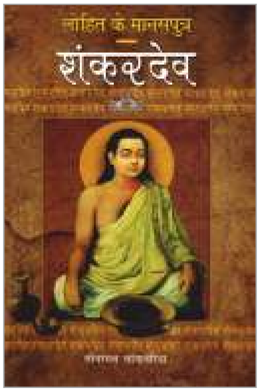

लोहित के मानसपुत्र शंकरदेव

समीक्षक : **डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'**

लेखक : **साँवरमल सांगानेरिया**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 456

मूल्य : रु. 545/-

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा श्री साँवरमल सांगानेरिया द्वारा लिखित, असम के भक्तिकालीन संत कवि शंकरदेव की जीवनगाथा को 'लोहित के मानसपुत्र शंकरदेव' शीर्षक से जिज्ञासु पाठकों को उपलब्ध कराया जाना, निस्संदेह भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के उन्नयन में महत्वपूर्ण कदम कहा जा सकता है।

इस कृति की 'भूमिका' में असमिया की प्रख्यात लेखिका श्रीमती इंदिरा गोस्वामी द्वारा लिखे गए शब्द मेरे इस कथन का साक्ष्य दे रहे हैं। इंदिरा जी ने लिखा है, 'यह सच है कि हिंदी भाषा में श्रीमंत शंकरदेव के विषय में विशेष लिखा न होने के कारण ये हिंदी, बल्कि असमिया-इतरभाषी समाज में अपेक्षाकृत कम जाने जाते हैं। इस महापुरुष पर हिंदी में विस्तृत पुस्तक उपलब्ध नहीं होने के कारण कबीरदास, नानकदेव, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु की तरह इनकी अखिल भारतीय प्रसिद्धि नहीं हो सकी।'

चार खंडों में प्रामाणिक तथ्यों के साथ लिखी गई इस कृति में लेखक ने श्रीमंत शंकरदेव की जीवनगाथा रची है। पहला खंड है 'जीवनपीठिका', जिसमें लेखक ने अनेक रोचक प्रसंगों के माध्यम से संत कवि के बाल्यकाल का परिचय पाठकों से कराया है। दूसरा खंड है 'चरैवेति चरैवेति', जिसमें लेखक ने श्रीमंत शंकरदेव द्वारा की गई यात्राओं का रोचक वर्णन किया है। 'उत्कल' की यात्रा का वर्णन देखिए— 'महानदी की दो धाराओं के मध्य बसे पाँच सौ वर्ष पुराने कटक नगर की शोभा अद्‌भुत थी। वहाँ रात्रि-विश्राम कर दूसरे दिन पुरी की ओर अग्रसर होते हुए मंदिरों के नगर भुवनेश्वर पहुँचे। वहाँ के बिंदु सरोवर में स्नान कर सभी लिंगराज मंदिर तथा अन्यान्य मंदिर गए। वहाँ के अद्‌भुत स्थापत्य ने सबको आकर्षित किया।'

निस्संदेह इस पुस्तक का यह खंड बहुत ही मूल्यवान, रोचक और अनूठी जानकारियों से पूर्ण है। सिक्खों के पहले गुरु नानकदेव जी की तरह ही श्री शंकरदेव ने भी जन-कल्याण के लिए जो यात्राएँ की हैं, उनका सांस्कृतिक महत्व नकारा नहीं जा सकता।

इस कृति का तीसरा खंड 'संघर्ष' सर्वाधिक महत्व का है, जिसमें संत शंकरदेव की साधना का वर्णन हमें मिलता है, जो पाँच सौ वर्ष पूर्व एक संत के परोपकारी जीवन का दस्तावेज़ बन गया है। अंतिम खंड 'परिणति' तो 'संस्कृति-पुरुष' शंकरदेव के जीवन की उपलब्धियों को जिज्ञासुओं के सामने बड़े ही रोचक और प्रामाणिक रूप में ला देता है। पुस्तक के परिशिष्ट में दी गई जानकारियाँ तो इस कृति को और अधिक मूल्यवान बना देती हैं।

श्री साँवरमल सांगानेरिया ने इस ग्रंथ की भूमिका में लिखा है—'महात्मा गांधी जब विलायत से बैरिस्टरी कर भारत लौटे थे, तब उनका एक आलेख 'हिंद स्वराज' में छपा था। इसमें उन्होंने बिना जानकारी के लिख दिया कि असम के लोगों की अपनी कोई सांस्कृतिक परंपरा नहीं है। ...असम के अतीत के बारे में उन्हें (गांधी जी को) बताने के लिए महापुरुष शंकरदेव रचित 'कीर्तन-घोषा, भागवत' आदि ग्रंथों के साथ माधवदेवकृत 'नामघोषा', माधव कंदली रचित 'रामायण', राम सरस्वती की लिखी 'महाभारत' आदि ग्रंथ भेंट किए गए।... यह सब जानकर गांधीजी ने उक्त लेख में लिखी बातों को अपनी 'हिमालयन ब्लन्डर' बताया और आगे एक लेख लिखकर अपनी भूल को सुधारा।'

सचमुच असम की संस्कृति और वहाँ के संत कवि शंकरदेव को जानने की दृष्टि से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित यह 'जीवनगाथा' अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रामाणिक ग्रंथ कहा जाएगा।

झारखंड समग्र आयाम

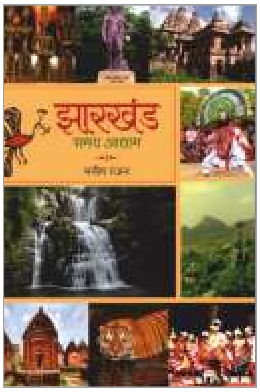

समीक्षक : **डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'**

लेखक : **डॉ. मनीष रंजन**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 448

मूल्य : रु. 590/-

बिहार राज्य से अलग करके एक राज्य के रूप में उदित होने वाले भारत गणतंत्र के नवोदित राज्य 'झारखंड' के विषय में सब-कुछ जानने की लालसा रखने वाले जिज्ञासुओं के लिए डॉ. मनीष रंजन द्वारा लिखित और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित ग्रंथ 'झारखंड समग्र आयाम' अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तक कही जा सकती है।

स्वर्गीय अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्रित्व में तीन राज्यों—मध्य प्रदेश, बिहार एवं उत्तर प्रदेश को काटकर प्रशासनिक दृष्टि से क्रमशः जो तीन नए राज्य अस्तित्व में आए थे, वे हैं—छत्तीसगढ़, झारखंड एवं उत्तराखंड। इनमें से 'झारखंड' ऐसा राज्य है, जहाँ आदिवासी समाज और खनिज की बहुलता ने इसे भारत का चर्चित राज्य बना दिया है।

दो दशक से अधिक की राजनैतिक यात्रा में झारखंड राज्य ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से कितना विकास किया है, उसी को आधार बनाकर लेखक डॉ. मनीष रंजन ने यह ग्रंथ रचा है।

भारत को और उसके राज्यों को समग्र रूप से जानने की उत्सुकता प्रायः सभी देशवासियों और विशेष रूप से झारखंड की जनता के हृदय में होती ही होगी। डॉ. मनीष ने उक्त पुस्तक में इस नवोदित राज्य की ऐतिहासिक, शैक्षिक, प्रशासनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थिति के साथ-ही-साथ इस राज्य के परिवहन, उद्योग-धंधों, पर्यटन, संचार, शिक्षा, खेल-कूद आदि का भी प्रामाणिक लेखाजोखा जुटाया है।

लेखक ने अपने इस ग्रंथ को कुल 17 परिच्छेदों में विभक्त किया है। प्रथम परिच्छेद 'इतिहास के आईने में झारखंड' बहुत प्रामाणिक बन गया है, जिसमें लेखक ने ऐतिहासिक स्रोत, प्रागैतिहासिक काल, प्राचीन इतिहास, मध्य कालीन इतिहास और आधुनिक काल शीर्षकों से झारखंड के बारे में प्रामाणिक जानकारी जुटाई है।

लेखक ने कहा है, 'झारखंड क्षेत्र से पुरातात्विक स्रोत के अंतर्गत प्राप्त प्राचीनतम साक्ष्य लगभग 1,00,000 ई.पू. के पुरा पाषाणकालीन (Paleolithic) पत्थर के उपकरण के रूप में प्राप्त हुए हैं। राज्य के बोकारो से हस्तकुठार तथा हजारी बाग के इस्को, सरैया, रहम, देहोंगी आदि से पुरा पाषाणकालीन पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं।' निस्संदेह, यह सारा विवरण जहाँ प्रमाणपुष्ट है, वहीं अत्यधिक रोमांचक भी बन गया है।

'प्रमुख विद्रोह एवं आंदोलन' तथा 'राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में भूमिका' शीर्षक से लिखे गए अध्यायों को पढ़कर तो झारखंड की महत्वपूर्ण भूमिका पर सहज ही गर्व होता है। इसी के साथ लेखक ने 'स्वतंत्रता सेनानी एवं विभूतियाँ' शीर्षक परिच्छेद में जो महत्वपूर्ण जानकारियाँ दी हैं, वे तो पूरे देश के लिए गर्वित होने की बात है। इसी प्रकार 'सांस्कृतिक विरासत' और 'लोककलाएँ' अध्यायों के अंतर्गत दी गई प्रामाणिक जानकारियाँ प्रबुद्ध पाठकों की ज्ञानवृद्धि कराती हैं, तो इस ग्रंथ का 'साहित्य व साहित्यकार' अध्याय तो बहुत अधिक स्मरणीय बन गया है।

झारखंड राज्य में 'नागपुरी साहित्य' के साथ ही 'खोरठा साहित्य, कुरमाली साहित्य, संताली साहित्य, मुंडारी साहित्य' जैसी अनेक साहित्यिक धाराओं के विद्यमान होने की जानकारी तो निश्चय ही पाठकों को अभिभूत करने वाली है।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने डॉ. मनीष रंजन की इस पुस्तक का प्रकाशन कर भारत के एक नवोदित राज्य की बहुमुखी समग्र प्रगति एवं विकास से जिज्ञासु पाठकों को परिचित कराया है, जो राष्ट्रीय एकता की अभिवृद्धि में बड़ा सकारात्मक कदम कहा जा सकता है। राज्य एवं राष्ट्र की प्रशासनिक सेवाओं में जाने के इच्छुक युवाओं के लिए राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित यह ग्रंथ विशेष रूप से सहायक सिद्ध होगा। ग्रंथ का मुद्रण निर्दोष है और पुस्तक का 'गेटअप' आकर्षक है।

हम अंधन के अंध हमारे

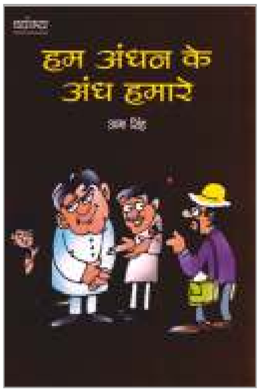

समीक्षक : **भारती पाठक**

लेखक : **आभा सिंह**

प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, उत्तर प्रदेश।

पृष्ठ : 100

मूल्य : रु. 250/-

किसी स्थापित सर्वमान्य व्यवस्था या परिस्थिति का यथोचित, रुचिकर व्यंग्यात्मक आख्यान तभी संभव है जब उन व्यवस्थाओं से लेखक स्वयं गुजर चुका हो या बराबर उन परिस्थितियों से दो-चार होता रहा हो और उन पर अपनी समग्र दृष्टि रखते हुए थोड़े शब्दों में उसे इस प्रकार पठनीय और ग्रहणीय बना दे कि पाठक उस परिस्थिति में स्वयं को अनुभव करके व्यंग्य की तीव्रता को महसूस कर सके। आभा सिंह ऐसी ही रचनाकार हैं जिनमें पाठकों के मनोभावों को समझकर उनके ऐच्छिक आस्वादन के अनुरूप भाषा गढ़ने की अद्भुत क्षमता है जिससे वे व्यंग्य लेखन को भी इतना सरल और बोधगम्य बनाकर प्रस्तुत करती हैं कि भावों को समझने में पाठक को किसी अतिरिक्त कुशलता की आवश्यकता महसूस नहीं होती है।

देश की चर्चित महिला व्यंग्यकारों की सूची में लगातार अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराती डॉ. आभा सिंह का तीसरा व्यंग्य संग्रह 'हम अंधन के अंध हमारे' अपने शीर्षक से ही वर्तमान राजनीतिक सरोकारों के बीच आम जनता की स्थिति की ओर इशारा करता है। पुस्तक में छोटी-बड़ी कुल 25 व्यंग्य रचनाएँ हैं जो प्रथम दृष्ट्या विषयों की विविधता से प्रभावित करती हैं। लेखिका द्वारा एक कुशल व्यंग्यकार की तीक्ष्ण दृष्टि से सामाजिक विसंगतियों को देखना और अपना पक्ष प्रस्तुत करना पुस्तक को विशेष रूप से पठनीय बनाता है।

राजनीति हो या नैतिकता, धर्म हो या इतिहास, साहित्य हो या समाज, विषयों के चुनाव में लेखिका की अपने परिवेश के प्रति सजगता परिलक्षित होती है। उनके विचारों से आम जनजीवन से संबंधित कोई भी पक्ष अनदेखा नहीं रह गया है। अपनी बात कहते हुए वह स्वयं चकित भी हैं कि आम आदमी जो लोकतंत्र की सबसे कमजोर, किंतु आवश्यक कड़ी है, उसी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह तमाम सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा परिवेशीय विसंगतियों

से सरोकार रखते हुए भी न सिर्फ उनसे निर्लिप्त रहे, बल्कि ऐसा आचरण भी करे मानो ये समस्त समस्याएँ उसी की तरह आम हैं और जीवन ऐसे ही चलता है।

दिखाई न देना और देख न पाना दोनों अलग-अलग अवस्थाएँ हैं। एक में मनुष्य की असमर्थता है तो दूसरे में मनुष्य का सामर्थ्य। जिसे दिखाई न देता हो, उसे आप नाना विधि, नाना रूपों से देखने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। देख न पाने वाले को आप किसी रूप में कुछ नहीं कर सकते हैं। दूसरी अवस्था के आधार पर जब पहली अवस्था के बारे में सोचा जाए तो वही अहसास होता है जो सरकार के नजरिए से विपक्ष को देखने से होता है। भारतीय लोकतंत्र में व्याप्त जनमानस द्वारा जाति, धर्म तथा आर्थिक स्थिति के आधार पर विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की अंधभक्ति को इंगित करता यह शीर्षक व्यंग्य अपनी तथ्यात्मक प्रासंगिकता के चलते बरबस अपनी ओर ध्यान खींचता है।

'मध्यम वर्ग : माध्यम वर्ग उर्फ मद्धम वर्ग' में अपनी सामाजिक और वैचारिक परिस्थितियों के साथ निश्चय-अनिश्चय के बीच त्रिशंकु की तरह बल खाते मध्यम वर्ग के वास्तविक चित्रण की रोचकता है तो 'साहित्यिक इच्छा का मतिदान' साहित्य जगत के गिरते नैतिक मूल्यों तथा साहित्यिक मंचों की वर्तमान दशा को दर्शाता एक बेहद प्रासंगिक व्यंग्य है। स्त्री कामकाजी हो या गृहलक्ष्मी, रसोईघर को चाहे-अनचाहे उसका आईना माना जाता है और इसी विषय को बड़ी ही संवेदनशीलता से किंतु हास्य के बाने में लपेट कर लिखा एक महत्वपूर्ण व्यंग्य है 'सब्जियों के साथ महिलाओं की जुगलबंदी'। "कभी-कभी तो लगता है कि हम महिलाओं का जीवन किसी संत-सा होता है जिनके भाग्य में केवल विचार करना लिखा होता है। विचार हम करते हैं और विमर्श कोई और निकालता है। नश्वर जीवन को अनश्वर साबित करने के लिए हम सुबह से व्यवस्था में लग जाते हैं। क्या खाना, क्या बनाना और क्या खिलाना, रोजाना अड़े-खड़े इन प्रश्नों ने जीवन को जुगलबंदी ही बना दिया है", कहते हुए लेखिका सब्जियों को अपनी सहचरी की तरह बरतती है जो उसका भरपूर साथ देती है और वही है जो उसे जीवन से मोक्ष का द्वार दिखा सकती है। पुस्तक के व्यंग्य और कटाक्ष सिर्फ कुरेदते ही नहीं, पढ़ने वाले को एक विचार देते हुए बरबस मुस्कुराने पर भी विवश करते हैं। समसामयिक विषयों को समेटे एक पठनीय और संग्रहणीय संकलन है।

भूमंडलीकरण की कहानियाँ

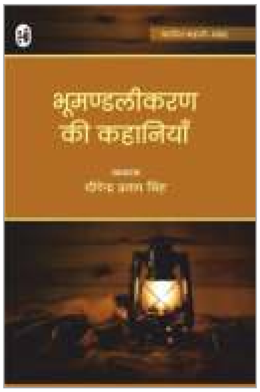

समीक्षक : **अवनीश यादव**

संपादक : **धीरेंद्र प्रताप सिंह**

प्रकाशक : साहित्य भंडार, प्रयागराज।

पृष्ठ : 175

मूल्य : रु. 250/-

बदलाव सृष्टि और समाज की स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसे हर दौर में महसूस किया जाता रहा है, पर जहाँ तक बात 90 के दशक की है, यह दशक बाजारवाद और उपभोक्तावाद के नज़रिए से देखा गया। इन दोनों के केंद्र में पूँजी है, यानी अर्थाधारित व्यवस्था। इस व्यवस्था में उन्हीं चीजों की महत्ता शेष रह जाती है जो बाजार और व्यापार के योग्य हैं। आम आदमी बाजार में संशय की दृष्टि से देखा जाता है। विकास और सारी दुनिया को मुट्ठी में करने की अवधारणा (भूमंडलीकरण) के मुहाने पर जमा पूँजी इस संशय का हेतु है क्योंकि इसके केंद्र में अर्थ है; मनुष्यता और मानवता नहीं। मनुष्य का संशय में होना, उसके मूल्यों और सामाजिक सरोकारों का संशय में होना है, सभ्यता और संस्कृति का संशय में होना है। बदलाव की इस विवशता और व्यापकता को रचनाकारों ने अपने-अपने नज़रिए से देखने की हर कोशिश की है, जिसका संकलन-संपादन युवा शोध अध्येता डॉ. धीरेंद्र प्रताप सिंह की सद्यःप्रकाशित पुस्तक 'भूमंडलीकरण की कहानियाँ' में सहज तौर पर देखा जा सकता है।

'अँधेरे में मद्धिम रोशनी के साथ लालटेन' का बना चित्र, अर्थपूर्ण है। ग्लोबलाइजेशन की सारी अवधारणा इसी लालटेन की मद्धिम पीली लौ में पढ़ी जा सकती है। यह आवरण बताता है कि भूमंडलीकरण ने हमसे क्या-क्या छीना? यह महज लालटेन नहीं ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति रही है। कहना ही होगा कि अब घर, 'बाजार' हो गया एवं गाँव 'शहर' और हर सदस्य 'उपभोक्ता'। इस होने में बहुत कुछ का टूटना और छूटना है।

जहाँ तक मूल बात चयनित कहानियों की है, प्रस्तुत संकलन में महत्वपूर्ण लेखकों की कुल ग्यारह मानीखेज कहानियाँ संकलित हैं मसलन, उदयप्रकाश की कहानी 'पॉल गोमरा का स्कूटर', 'अगली शताब्दी के प्यार का रिहर्सल'; अखिलेश की 'पॉलिथीन में पृथ्वी'; मधु कांकरिया की 'फागुन की मौत : बतर्ज किस्सा'; महेश कटारे की 'रात बाकी'; रणेन्द्र की 'नदी गायब है'; एस.आर. हरनोट की 'अनुपस्थित'; देवेंद्र की 'स्वांग'; मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'बनाना रिपब्लिक'; शिवमूर्ति की 'खैरियत की ख़ाक'; जयनंदन और पंकज मित्र की कहानी 'पड़ताल' शामिल हैं। इन कहानियों में मौजूद है ग्लोबलाइजेशन का चेहरा या यों समझें कि भूमंडलीकरण की अवधारणा की समस्त खूबियाँ और खामियाँ पैबस्त हैं। किसी पुस्तक के संपादन में संपादक की परीक्षा सामग्री के चयन, त्याग और संचय के विवेक पर निर्भर करती है। क्या रखने से ज्यादा जरूरी होता है क्या छोड़ने का विवेक,

तभी एक अच्छा संकलन तैयार हो पाता है। कहानी 'अगली शताब्दी के प्यार का रिहर्सल' भौतिकवादी और भूमंडलीकरण के दौर में प्रेम को घाटे-मुनाफे के सौदे के रूप में प्रस्तुत करती है। पात्र दीपा की मनःस्थिति देखिए, 'उसने योजना बनाई, जितेंद्र को प्यार के झूले पर मद्धिम झुलाती रहेगी। अंग्रेजी, मध्यकालीन इतिहास और भूगोल विभागों में जाकर प्रतिभावानों को चॉकलेट, टॉफी खिलाएगी, उनमें से कई के साथ चक्कर चलाएगी। पार्टियों में जाना ज्यादा होगा, वहाँ कुँवारे आई.ए.एस. को खोजेगी और पटाएगी...आखिर पापा की प्रॉपर्टी भी कोई चीज़ है।' कहना ही होगा प्रेम जैसे मानवीय मूल्य के केंद्र में अब पूँजी है। मधु कांकरिया की कहानी 'पॉलिथीन में पृथ्वी' हमें अहसास कराती है कि भूमंडलीकरण के दौर में उन्नत तकनीकी किस तरह मनुष्य को संवेदना से दूर करती हुई अमानवीय बनाती चली जा रही है। भ्रूण हत्या ग्लोबल होते समाज की अमानवीयता की पराकाष्ठा है। महेश कटारे की कहानी 'फागुन की मौत : बतर्ज किस्सा' किसान की विवशता को इंगित करती और दिखाती है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ किस तरह किसान के लिए दीमक हैं। रणेन्द्र की कहानी 'रात बाकी' आदिवासी समाज और उसके संकट का आख्यान है। बढ़ती तकनीकी किस तरह आदिवासी क्षेत्र और आदिवासियत को नष्ट कर रही है, यही इस कहानी के चिंतन का मूल है।

एस.आर. हरनोट की कहानी 'नदी गायब है' की चिंता में पर्यावरण है। देवेंद्र की कहानी 'अनुपस्थिति' उच्च शिक्षा व्यवस्था में चयन प्रक्रिया की तिकड़म की पड़ताल है। शिक्षा बेरोजगारी का मुकम्मल खाका पेश करती है यह कहानी। गंवई राजनीति और राजनीति में घुसे जाति के फैक्टर को दर्शाती है शिवमूर्ति की कहानी 'बनाना रिपब्लिक'। ग्लोबल दौर में धर्म और बुजुर्गों के वर्तमान को बयाँ करती कहानी हैं—जयनंदन की कहानी 'खैरियत की ख़ाक' और पंकज मित्र की कहानी 'पड़ताल'।

संकलित कहानियों की पड़ताल के उपरांत आश्वस्त हुआ जा सकता है कि ये कहानियाँ भूमंडलीकरण के संपूर्ण स्वरूप को बखूबी दर्शा रही हैं। ख़ैर, फ्लैप पर उचित ही लिखा गया है कि इस संग्रह की कहानियाँ भूमंडलीकरण की चिंताओं और चुनौतियों से रू-ब-रू कराती हैं। यह संग्रह भूमंडलीकरण के समय और समाज को देखने का एक सार्थक और अच्छा प्रयास है। कुल मिलाकर सामग्री के लिहाज़ से यह एक संग्रहणीय पुस्तक है।

रिपोर्टिंग इंडिया

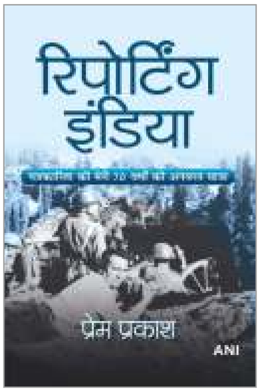

समीक्षक : **ब्रजेश राजपूत**

लेखक : **प्रेम प्रकाश**

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 256

मूल्य : रु. 500/-

पत्रकारिता जल्दबाजी में लिखा इतिहास होता है। आज का कवरेज कल के इतिहास में बदल जाता है। इस दौर के वरिष्ठ टीवी पत्रकार प्रेम प्रकाश की किताब 'रिपोर्टिंग इंडिया' इस बात पर मजबूती से मुहर लगाती है। आजादी से लेकर आज तक की घटनाओं पर न केवल नजर रखना, बल्कि उनमें से अधिकतर घटनाओं के दौरान वहाँ मौजूद रहकर उनका कवरेज करना पत्रकारिता में ऐसी मिसाल है जो मिलना मुश्किल है। न्यूज एजेंसी 'एएनआई' के संस्थापक प्रेम प्रकाश ने अपनी किताब 'रिपोर्टिंग इंडिया' में उन घटनाओं का रोचक ब्यौरा दिया है जो आज इतिहास में दर्ज हो गई हैं। फिर चाहे वे चीन और पाकिस्तान से युद्ध हो, ताशकंद में शास्त्री जी का निधन हो, बांग्लादेश में पाकिस्तान की सेना का समर्पण हो, आपातकाल के किस्से हों, ऑपरेशन ब्लू स्टार हो, 1984 के दिल्ली में सिखों के खिलाफ हुए दंगे हों, राजीव गांधी पर श्रीलंका में हुआ हमला हो या फिर अटल बिहारी वाजपेयी सरकार का एक वोट से गिरना या फिर वी.पी. सिंह का अचानक प्रधानमंत्री चुना जाना, इन सारी घटनाओं के दौरान प्रेम प्रकाश अपनी कैमरा टीम के साथ मौके पर थे। इन सारी घटनाओं के वो सारे फुटेज जो प्रेम प्रकाश जी ने लिए, हम एक साथ तो नहीं देख सकते, मगर उन घटनाओं की यादों को इस किताब में बहुत सरल भाषा में अच्छे से पढ़कर उनसे रू-ब-रू हो सकते हैं।

पाकिस्तान से विस्थापित परिवार का दिल्ली में आकर बसना, देश में आजादी का सूरज देखना और फिर 22 साल की उमर से कैमरा लेकर पत्रकारिता करने का जो सफर पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से शुरू हुआ तो वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी तक चलना किसी सपने के जैसा है, मगर अब वयोवृद्ध नब्बे की वय वाले प्रेम प्रकाश जी को ये सब हासिल हुआ है तो उसके पीछे उनके काम को लेकर लगन, पत्रकारिता के लिए जोखिम उठाने से पीछे नहीं हटने की हिम्मत के साथ ही उनको मिला बेहतर स्वास्थ्य भी है जो उनको आज भी सक्रिय बनाए हुए है। इस किताब में तो उन्होंने अपने संस्मरण रोचक अंदाज में लिखे ही हैं जब वो इन किस्सों को सुनाते भी हैं तो किसी भी पत्रकार को उनसे रश्क हो सकता है कि कितना इतिहास इस बुजुर्ग पत्रकार ने आमने-सामने से देखा है।

यह किताब आजादी के बाद से अब तक की खास घटनाओं का आँखों देखा दस्तावेज भी है। देश-विदेश की छोटी-बड़ी घटनाओं को कैमरे से कवर करना, उनकी रिपोर्ट बनाना और उसे प्रसारण करने वाले दफ्तर तक भेजना भी आसान नहीं होता, मगर इस किताब में आप समझ जाएँगे कि फुटेज या फोटो को भेजने के लिए कैसे पुराने

दिनों से लेकर आज की तकनीक बदली और प्रेम प्रकाश जी ने अपने पेशेवर जिंदगी में कितना बदलाव न केवल देखा, बल्कि उससे सीखा भी। पत्रकार का काम आसान नहीं होता और वो भी कैमरामैन का जिसका कैमरा सबको दिखता और कुछ को आँखों में खटकता भी है। अफगान युद्ध के दौरान प्रेम जी की टीम को गिरफ्तार कर नजीबुल्लाह के पास ले जाना, आपातकाल में उनको इनकम टैक्स छापे की चेतावनी देना और कुछ दिनों के लिए देश से बाहर भी रहना कोई आसान जिंदगी नहीं है, मगर प्रेम प्रकाश जी ने इस किताब की मार्फत लोगों को बताया है कि पत्रकारिता जितनी आकर्षक होती है, उतनी ही जानलेवा भी हो सकती है। इस पूरी किताब को पढ़ना आजादी के बाद से आज तक के इतिहास को एक सक्रिय कैमरामैन पत्रकार की नजर से देखना भी है। देश से जुड़ी तकरीबन सभी बड़ी घटनाओं के मौकों पर प्रेम प्रकाश अपनी टीम जिसमें उनके साथी सुरेंद्र कपूर के साथ रहे हैं फिर चाहे वो राजनीतिक बदलाव हो, सत्ता परिवर्तन हो या युद्ध हो, 'ऑपरेशन ब्ल्यू स्टार' हो या फिर आतंकवादियों की रिहाई हो, अनेक भुला दी गईं घटनाएँ, यह किताब पढ़कर फिर जिंदा हो जाएँगी। यह किताब देश में फोटोग्राफी और टीवी मीडिया की शुरुआत से लेकर उनमें हुए विस्तार को भी बताती है कि एएनआई आने से पहले विदेशी समाचार एजेंसियाँ कैसे और किस माध्यम से फुटेज और फोटो मंगातीं और उसका प्रसारण पूरी दुनिया में करती थीं।

दरअसल यह किताब आजादी के बाद से बदलते इंडिया का आइना है जिसका नाम लेखक ने 'रिपोर्टिंग इंडिया' दिया है। पत्रकारिता के अलावा तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं पर नजर रखने वालों को यह किताब बहुत पसंद आएगी।

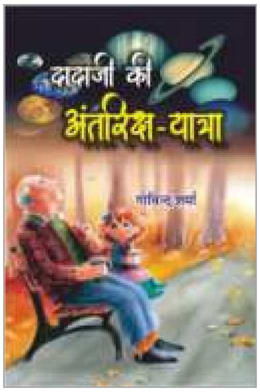

दादा जी की अंतरिक्ष यात्रा

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **गोविंद शर्मा**

प्रकाशक : साहित्यागार, जयपुर।

पृष्ठ : 56

मूल्य : रु. 150/-

गत पाँच दशकों से निरंतर बाल साहित्य, व्यंग्य तथा लघु कथा लेखन में सक्रिय गोविंद शर्मा की अब तक बाल साहित्य के क्षेत्र में 40 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बाल साहित्य में उल्लेखनीय योगदान के लिए उन्हें अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित किया जा चुका है।

साहित्यागार, जयपुर से प्रकाशित अपनी नवीनतम पुस्तक 'दादा जी की अंतरिक्ष यात्रा' में उन्होंने पहली बार अंतरिक्ष पर कलम चलाई है। सदियों से हमारे यहाँ सूर्य, चंद्रमा, धरती, सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण एवं तारों के बारे में अनेक कथाएँ हैं। उनकी पूजा भी की जाती है, पर इस पुस्तक में लेखक ने अंतरिक्ष में स्थित अनेक ग्रह-उपग्रहों के बारे में कथात्मक शैली में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिचय देने का प्रयास किया है, पर अंतरिक्ष ज्ञान भी अंतरिक्ष की तरह अनंत, असीम है।

इस पुस्तक की शुरुआत 'यात्रा' शीर्षक से होती है। दादा जी अपने ही घर में बैठे-बैठे घर के बच्चों को कहानी के माध्यम से अंतरिक्ष के रहस्यपूर्ण ग्रहों के बारे में बताते हैं। 'कोरोना काल' में लगे लॉकडाउन के दौरान दादा जी बच्चों के साथ कैसे समय का सार्थक सदुपयोग करते हैं, यह पुस्तक हमें सिखाती है।

'चाँद' को ही 'सोम' कहा जाता है। इस बात को बहुत पढ़े-लिखे लोग भी नहीं जानते। दादाजी बड़े सरल-सहज शब्दों में बताते हैं कि चंद्रमा लगभग इतना ही पुराना है जितनी हमारी पृथ्वी यानी लगभग 460 करोड़ वर्ष। चंद्रमा की सतह पर सबसे पहले 'नील आर्मस्ट्रांग' तथा 'एडविन एल्ड्रिन' ने कदम रखे थे। चंद्रमा पर एक ऐसी भी ऊँची चोटी है, जिसकी ऊँचाई 35,000 फुट है। मंगल ग्रह सूर्य की परिक्रमा 687 दिनों में पूरी करता है। मंगल ग्रह पर सौरमंडल का सबसे बड़ा ज्वालामुखी भी है।

बुध पर वायुमंडल न होने के कारण वहाँ जीवन संभव नहीं है। बृहस्पति सूर्य के हजारवें भाग के बराबर है और पृथ्वी से 1300 गुणा बड़ा है। शुक्र पृथ्वी के सबसे ज्यादा निकट का ग्रह है। इस ग्रह पर तापमान लगभग 500 सेंटिग्रेड होता है।

इस पुस्तक में शनि, यूरेनस, नेप्च्यून, बौने ग्रह, सूरज, सौरवायु, चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण, सूर्य हमारा जीवन है, धरती, वेधशाला, किताबों का जादू शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने कथात्मक शैली में ऐसी जानकारियाँ दी हैं, जिससे छोटी उम्र में ही बच्चे अंतरिक्ष के अनेक गतिविधियों से परिचित हो सकते हैं और जीवन भर के लिए ऐसी जानकारियाँ उनके ज्ञान की अमूल्य निधि बन सकती हैं। चित्रांकन विषयानुकूल है।

मन के शब्दों की गुल्लक

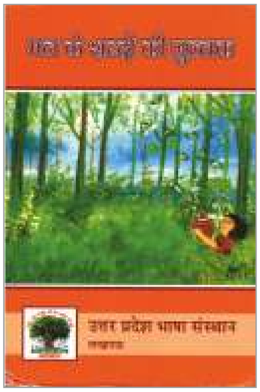

समीक्षक : **डॉ. रजत शर्मा**

लेखक : **गीता टण्डन**

प्रकाशक : उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान, लखनऊ।

पृष्ठ : 232

मूल्य : अनुपलब्ध

यदि साहित्य जनसमूह की चित्तवृत्ति का प्रतिबिंब है तो वह कवि के अकेलेपन में पिरोए गए संवेदात्मक-विचारों एवं भावों की आत्मिक अभिव्यक्ति भी है। गीता टण्डन का काव्य-संग्रह 'मन के शब्दों की गुल्लक' उन्हीं आत्मिक-अभिव्यक्तियों का संकलन है। आत्मिक-अभिव्यक्ति से अभिप्राय केवल उनके निजी क्षणों में लिखी गई कविताओं से नहीं है, बल्कि इससे अभिप्राय उनके अंतर्मन के भाव एवं विचारों के आत्मालोचन की अभिव्यक्ति से है। अंतर्मुखी होती ये कविताएँ स्वयं से संवाद स्थापित करती हुई

बहिर्मुखी होती हैं। इस कारण विषय-वैविध्य इस संग्रह की विशेषता हो जाता है।

लेखिका का अंतर्द्वंद्वित मन इस संग्रह में अभिव्यक्ति पाता है। यह अंतर्द्वंद्व आत्मालाप की शैली को अपनाता है। इसीलिए उनकी कविताएँ कभी उनके अंतरंग की अभिव्यक्ति करती हैं तो कभी वे सामाजिक हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो ये कविताएँ आत्म-संज्ञान से आरंभ होकर पर-संज्ञान तक का सफर तय करती हैं। यही नहीं, लेखिका के जीवन-अनुभवों की अनुभूतिगत-छवियाँ इस काव्य-संग्रह का वैशिष्ट्य बन जाती हैं और विविध भाव-ध्वनियाँ इस काव्य-संग्रह को आकार देती हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति की नित-नूतनता या दूसरे शब्दों में कहा जाए तो चिर-परिवर्तनशीलता का गुण विद्यमान है, जो उनकी कविताओं को एकरस नहीं होने देता, बल्कि ये कविताएँ चिर-परिवर्तन की ध्वनि को आत्मसात् करती हुई अनेकरसता लिए हैं। एक ओर उनकी कविताओं में प्रकृति का सहज स्वच्छंद प्रवाह दिखता है तो दूसरी ओर मानव निर्मित कोरोना-संकट में सामान्य जन का उद्वेलित एवं अवसादी मानस भी है।

उनकी कविताओं में आत्मालाप की कविताएँ हैं तो उन महापुरुषों का भी स्मरण है, जिनका सामाजिक अवदान बहुत उच्च है। अतः ऐसी कविताओं में वह देश की विजय के लिए स्वयं की असंख्य हार के बावजूद बढ़ने का भाव रखती हैं जो पाठक में विजिगीषुवृत्ति का भाव संचारित करती हैं। साथ-ही-साथ यह संग्रह विविध स्वरावलियों का शांत निर्मल स्थल है। उनमें एक प्रकार का ठहराव है, जिनसे गुजरकर मनुष्य उमंग और जोश के साथ पुनः संघर्ष के लिए तैयार हो जाता है। लेकिन, यह लेखिका के स्वप्ननुमा जगत में कंटकों को भुलावा देने से नहीं आती, बल्कि जीवन की कंटक डगर में डूबने-उतराने की कश्मकश के बीच दृढ़ मानस के साथ आगे बढ़ने से आती हैं और पाठक में ऊर्जा का संचार करता है। यह विशेषता उनकी कविताओं का अभिन्न पक्ष है। इसीलिए यह संग्रह पाठक में ऊर्जा का संचार कर उन्हें जुझारू बनाता है और न हारने की प्रेरणा देता है तथा निरंतर आगे बढ़ने एवं कर्म करने का भाव पैदा करता है।

जीवन की कश्मकश केवल उनकी अपनी हो, ऐसा भी नहीं है, बल्कि दैनंदिन जीवन के अंतर्मन का मंथन उनकी कविताओं को जनसामान्य की भूमि पर स्थापित करता है। अपने अंतर्गुंथन के बावजूद उनकी कविताएँ समस्याग्रस्त तथा हताश होती दुनिया में भी जनसामान्य के लिए न हार मानने तथा निरंतर संघर्ष करने की आत्मप्रेरणा बन जाती हैं। मनुष्य द्वारा सब-कुछ नियंत्रित कर लेने की आधुनिक दृष्टि-भाव के विपरीत इस संग्रह की कविताएँ मानवीय सीमाओं से साक्षात्कार करते हुए उस प्रकृतिस्थ परमात्मा के समक्ष पूर्ण समर्पण करती हैं। लेकिन यह समर्पण निष्कर्म भाव को नहीं बढ़ाता, बल्कि संघर्ष की सीमाओं तक जाकर उस परमात्मा में असीम होना चाहता है। समस्या की पहचान करते आज के साहित्य के बीच नवोत्थान की प्रेरणा लिए यह संग्रह अपने आप में विशिष्ट हो जाता है। कर्म को प्रधानता देते हुए उनकी कविताओं में कर्तव्यनिष्ठा का भाव व्यक्ति से समाज और राष्ट्र तक की यात्रा करता है। यह उनके काव्य-संग्रह का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इन्हीं विशेषताओं के साथ यह संग्रह पाठकों के अंतर्मन से जुड़कर तादात्म्य स्थापित करता है।

नटखट बाल कहानियाँ

समीक्षक : **कमलेश पाण्डेय 'पुष्प'**

लेखक : **डॉ. नागेश पांडेय 'संजय'**

प्रकाशक : अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली

पृष्ठ : 136

मूल्य : रु. 450/-

बाल कहानियाँ बचपन की जीवंत तस्वीरों के साथ ही बाल सुलभ जिज्ञासा से जुड़े अनेक प्रसंगों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। प्रस्तुत बाल कहानी संग्रह में कुल 28 कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी में अलग-अलग रंग दृष्टिगत होते हैं। इनमें विज्ञान, पर्यावरण सुरक्षा, राष्ट्रीय भावना के साथ ही त्यौहारों का आनंद व मन को गुदगुदाने वाला हास्य बहुत ही सरल अंदाज में समाहित किया गया है। पहली कहानी 'खेल-खेल में' कहानीकार ने बाल मनोविज्ञान को बड़े ही सहज भाव से चित्रित किया है। अपनी बहन नेहा को परेशान करने के लिए उसका भाई राजू उसकी चप्पल को गुड़हल के पेड़ के नीचे छिपा देता है। जब वह उसे लेने जाती है तो वहाँ साँप देखकर बेहोश हो जाती है, जबकि सभी को भ्रम होता है कि साँप ने उसे काट लिया है। बच्चों के आपसी हँसी-मजाक कभी-कभी कैसे जानलेवा हो जाते हैं, इसका सटीक चित्रण है इस कहानी में। कहानी 'उड़न तश्तरी' ऐसी सीख भरी है कि बच्चों को फालतू कामों से दूर रहकर प्रेम से रहने और नित नई सोच को विकसित कर नए काम करने की प्रेरणा देती है। संग्रह की कहानियों की भाषा सरल व शब्द संख्या संक्षिप्त रखने का भरपूर प्रयास किया है कहानीकार ने।

'होली के गुब्बारे' कहानी में सीटू नामक खरगोश की व्यथा का मार्मिक चित्रण है जिसकी माँ की दवा की शीशी होली के गुब्बारे फेंक कर खोंखों बंदर ने तोड़ दी। फिर सभी कैसे मदद कर उसकी माँ के लिए दवा की व्यवस्था करते हैं, यह घटना बच्चों को अच्छी सीख देती है। इसी प्रकार 'ईद मुबारक' कहानी हिंदू-मुस्लिम दोनों धर्मों के लोगों को मिल-जुल कर रहने की सीख देती है। संग्रह की सभी कहानियों के शीर्षक बच्चों के मन को लुभाने वाले हैं और कहानी को पढ़ने की उत्सुकता में वृद्धि करते हैं। कहानी 'मैं जाग रहा था' में भाई-बहन

सोनल और साहिल के आपसी झगड़े और फिर प्रेम के माध्यम से कहानीकार ने यह बताने का प्रयास किया है कि हँसी का वातावरण जब भी होता है प्रेम की बेल खिल ही जाती है। 'चतुर मूर्तिकार' कहानी में बच्चों को यह उत्सुकता अंत तक रहती है कि आगे क्या होगा। मूर्तिकार अपनी चतुराई से राजा को कलाकारों की प्रतिभा का सम्मान करने को मजबूर कर देता है। कहानीकार ने इन कहानियों में जीवन में सफलता प्राप्ति के लिए जगह-जगह प्रेरणाप्रद बातें कही हैं। जैसे कि डॉक्टर अंकल कहानी में पंक्ति है—'चढ़ना-उतरना ही जीवन है। पढ़ाई भी पहाड़ है, पढ़ाई की सीढ़ियाँ सतर्क होकर चढ़ो तो आगे विश्राम ही विश्राम है। सुख ही सुख है।'

संग्रह की कहानियों में हास्य का पुट भी भरपूर है। 'टेढ़ी खीर' कहानी में सवालीराम के सवाल बच्चों को खूब हँसाते हैं, तो 'चूहे के पेट में चूहे कूदे' में कविता के रूप में चूहे और बिल्ला के संवाद को बहुत ही मनोरंजक तरीके से बताया गया है। कहानी 'टिल्लू की पतंग' में झंडे के तीन रंगों का प्रयोग करके उसे तिरंगा का रूप देना और उसे आसमान में उड़ाते समय बच्चों द्वारा गाया जाना—'झंडा उड़ता रहे हमारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा' उनके मन में देशभक्ति की भावना का संचार करती है। इन कहानियों में बच्चों के लिए जो भी उपयुक्त प्रसंग कहानीकार के मन में उभरा है, उसे समाहित करके सीख देने की कोशिश की है। भाषा का प्रयोग करते हुए कहानीकार बहुत सजग रहा है। बच्चों को गुदगुदाने वाली भाषा अच्छी लगती है, अतः ज्यादातर कहानियों के संवाद में इसे प्रयोग किया गया है। कहानी 'शरारत' में किशोर और विभोर जुड़वाँ भाइयों द्वारा एक-दूसरे के प्रति की गई शरारत को रोचक अंदाज में प्रस्तुत किया गया है। कहानी 'यस सर! नो सर!' में बच्चों द्वारा बोलने में हड़बड़ाहट की तरफ ध्यान आकृष्ट किया गया है, जो कि अकसर गलत शब्दों को उच्चारित कर बैठते हैं, जैसे कि 'यस सर' की जगह 'नो सर'।

कहानी 'काल करे सो आज कर' में बच्चों को अपना काम समय पर पूरा करने की शिक्षा एक नन्ही चींटी के माध्यम से दी गई है। इसी प्रकार कहानी 'जेम्स का बर्थडे' में उपहारस्वरूप जेम्स द्वारा पौधे दिया जाना पर्यावरण सुरक्षा के प्रति बच्चों को जागरूक करना है। कहानी 'दीवाली और नई भाभी' में कहानीकार ने बच्चों के लिए एक सुखद वातावरण निर्मित करके शिक्षा, मनोरंजन एवं रिश्ते में अटूट प्यार, सबको एक साथ पिरोकर बच्चों के मन को लुभाने का सफल प्रयास किया है। संग्रह की अन्य कहानियाँ भी बच्चों के लिए संजीवनी तुल्य हैं। यदि बच्चे एकाग्र मन से इन कहानियों को पढ़ें तो निश्चय ही उनका जीवन खुशहाली से भर उठेगा और वे देश के श्रेष्ठ नागरिक बन सकेंगे।

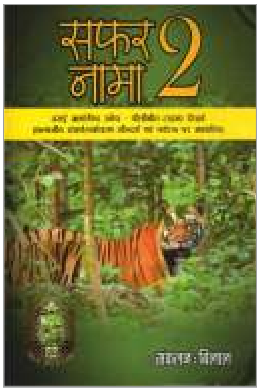

समीक्षक : **विजय कुमार 'शाश्वत'**

संकलन : **बिलाल मियाँ**

प्रकाशक : बिलाल मियाँ, पीलीभीत-262001।

पृष्ठ : 130

मूल्य : रु. 999/-

सफरनामा 2

भारत में वन्यजीव संरक्षण को देखते हुए वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 लागू किया गया। यह पौधों और जानवरों की प्रजातियों के संरक्षण हेतु अधिनियमित किया गया। ठीक एक वर्ष बाद 01 अप्रैल, 1973 को भारत में बाघों की चिंताजनक स्थिति को देखते हुए उनके संरक्षण को बढ़ावा देने और बाघों की घटती संख्या को पुनर्जीवित करने के लिए भारत सरकार द्वारा 'प्रोजेक्ट टाइगर' शुरू किया गया। इसकी शुरुआत नौ बाघ अभयारण्यों के साथ की गई थी। वर्तमान में भारत में 53 बाघ अभयारण्य हैं। 53वाँ बाघ अभयारण्य चित्रकूट का रानीपुर नामित किया गया है। ध्यातव्य है कि भारत का सबसे बड़ा टाइगर रिजर्व आंध्र प्रदेश में स्थित 'नागार्जुन सागर श्रीशैलम' और सबसे छोटा 'पेंच टाइगर रिजर्व' है। वहीं उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा अभयारण्य सन् 1986 में स्थापित 'हस्तिनापुर वन्यजीव अभयारण्य' और प्रदेश का पहला वन्यजीव अभयारण्य सन् 1957 में चंदौली जिले में स्थापित 'चंद्रप्रभा वन्यजीव अभयारण्य' है। उत्तर प्रदेश के संदर्भ में प्रदेश में एक राष्ट्रीय उद्यान, 26 वन्यजीव विहार और तीन टाइगर रिजर्व हैं।

भारत में प्रोजेक्ट टाइगर के आने के बाद भी बाघों के शिकार का भय लगातार बना रहा। इसके चलते शिकार रोधी नियम बनाए गए और टाइगर टास्क फोर्स गठित किया गया। टाइगर टास्क फोर्स की सिफारिशों के बाद बाघ संरक्षण संबंधी प्रयासों को मजबूत करने के लिए वर्ष 2005 में 'राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण' का गठन किया गया।

तराई आर्कलैंड स्केप क्षेत्र में भारत और नेपाल के चार टाइगर रिजर्व, सात राष्ट्रीय उद्यान तथा छह वन्यजीव विहार स्थापित हैं। बिलाल मियाँ द्वारा संकलित व संपादित 'सफरनामा 2' पुस्तक तराई आर्कलैंड स्केप के इन्हीं वन्यजीव विहारों की पड़ताल करती है। उनकी यह दूसरी पुस्तक है और वन्यजीव संघर्ष/पर्यावरण सौंदर्य, वन्यजीव पर्यटन पर आधारित है।

इस पुस्तक में भारत के तीन प्रदेशों—उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार एवं नेपाल के मध्य स्थित तराई आर्कलैंड स्केप के अंतर्गत एक उत्तम पर्यटन को दर्शाया गया है। पुस्तक उत्तराखंड के देहरादून स्थित 'राजाजी राष्ट्रीय उद्यान' से पर्यटन को शुरू करती है और नेपाल के 'शुक्लाफंटा राष्ट्रीय उद्यान' पर खत्म करती है। तराई आर्कलैंड स्केप के अंतर्गत वर्तमान में लगभग 650 से अधिक बाघ हैं जो बाघों की

लगभग 20 प्रतिशत की आबादी है। इसके अलावा यहाँ लगभग 750 गैंडे और 2500 हाथी पाए जाते हैं।

मूल रूप से पीलीभीत वन्यजीव फोटोग्राफर बिलाल मियाँ की यह पुस्तक हमें वन से जोड़ती है। साथ ही, संकटग्रस्त वन्यजीवों के बारे में सचित्र और सारगर्भित जानकारी मुहैया कराते हुए न केवल उनसे रू-ब-रू कराती है, अपितु पर्यावरण जागरूकता का संदेश भी देती है। ध्यातव्य है कि वर्ष 2014 के सापेक्ष 2022 में बाघों को दोगुना करने का लक्ष्य रखा गया था, किंतु पीलीभीत टाइगर रिजर्व ने यह लक्ष्य 2020 में ही प्राप्त कर लिया। इसके लिए पीलीभीत टाइगर रिजर्व को यू.एन.डी.पी., आई.यू.सी.एन., जी.टी.एफ., डब्ल्यू.डब्ल्यू.ई. और सी.ए.टी.एस. द्वारा संयुक्त रूप से Tx2 का प्रथम ग्लोबल अवार्ड भी दिया जा चुका है।

यह पुस्तक विभिन्न राष्ट्रीय उद्यानों, वन्यजीव विहारों तक पहुँचने, वहाँ के आकर्षण, उनके भौगोलिक क्षेत्र, पाए जाने वाले वन्यजीव, भ्रमण का उपयुक्त समय, वन क्षेत्र में प्रमुख भ्रमण स्थल, वन्यजीवों के संरक्षण, सांस्कृतिक पहलू पर विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करती है। पुस्तक में इसके अलावा 'उत्तर प्रदेश दर्पण' शीर्षक के अंतर्गत उत्तर प्रदेश का भौगोलिक, सांस्कृतिक और वानिकी का चित्र खींचने का सराहनीय प्रयास किया गया है। इसमें वन्यजीव अपराध को परिभाषित करते हुए वन्यजीव से जुड़े अधिनियमों, वन्य अपराध से संबंधित कानूनों एवं सजा प्रावधानों, अनुसूचियों, वनकर्मियों एवं अधिकारियों के दायित्वों, रेस्क्यू किए गए वन्यजीवों, दुर्घटना में मारे गए वन्यजीवों, अपने दायित्यों का निर्वहन करते हुए जान गँवाने वाले वनकर्मियों के बारे में सचित्र चर्चा की गई है।

पुस्तक में वन्यजीवन से संबंधित महत्वपूर्ण दिवस और विश्व जलवायु परिवर्तन पर भी जानकारी दी गई है। इसके अलावा भारतीय पशु-पक्षी, भारत में संकटग्रस्त वन्यजीव, वनक्षेत्रों में मानव हस्तक्षेप, पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक संपदाओं का संरक्षण, प्रकृति संरक्षण से होने वाले लाभ, वन्यजीव संसाधन, वन्यजीव के क्षेत्र में युवाओं का भविष्य, मानव-वन्यजीव संघर्ष जैसे विषयों पर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है। यह पुस्तक वन, वन्यजीवन और इससे जुड़े शोधार्थियों के लिए एक दस्तावेज है। यह चित्रात्मक पुस्तक पाठकों को मानसिक पर्यटन कराने के साथ-साथ पर्यावरण संदेश देते हुए वन्यजीवों के प्रति हमारी जिम्मेदारी से भी वाकिफ कराती है।

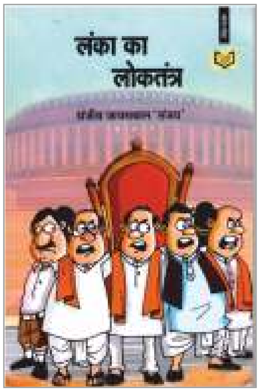

समीक्षक : **राजेंद्र भट्ट**

लेखक : **संजीव जायसवाल 'संजय'**

प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नोएडा (उ.प्र.)।

पृष्ठ : 156

मूल्य : रु. 300/-

लंका का लोकतंत्र

संजीव जायसवाल कई दशकों से लेखन कर रहे हैं। बच्चों-किशोरों के लिए उन्होंने विपुल मात्रा में साहित्य रचा है। व्यंग्य विधा में भी वह रचनाएँ कर रहे हैं। वह 25 से अधिक पुस्तकें लिख चुके हैं। वर्तमान व्यंग्य-संग्रह में 60 से अधिक व्यंग्य रचनाएँ है। इनके विषय मूलतः समसामयिक हैं। उनकी भाषा सरल-सहज और शैली प्रवाहपूर्ण है।

इन तकरीबन हज़ार शब्दों वाली व्यंग्य-रचनाओं से गुजरते हुए हम अपने समाज, राजनीति, संस्कृति के विविध पक्षों से दो-चार होते हैं। शीर्षक रचना 'लंका का लोकतंत्र' में समाज के विभिन्न वर्गों को प्रलोभन देते हुए बहुमत की खींच-तान से सरकार चलाने के तरीकों पर तंज कसा गया है। 'जनाब पाकिस्तान अली साहब' में अपने पड़ोसी देश द्वारा आतंकवाद को पालने-पोसने और फिर स्वयं उसके दुष्परिणाम भुगतने पर चुटीला व्यंग्य है। पुलिस-तंत्र और अपराधियों की मिली-भगत पर 'कटे होंठ वाला कौन' में चोट की गई है। 'इंद्रासन डोल गया' में बढ़ते भ्रष्टाचार की ओर ध्यान खींचा गया है। 'कानून! ये हाथ मुझे दे दो' में दिखाया गया है कि कैसे पेशेवर अपराधी राजनीतिबाज कानून की अवहेलना कर अपने लिए रास्ते निकाल लेते हैं। 'डंडे वही झंडे बदल गए' में चुटीले अंदाज़ में बताया गया है कि अगर आपको कानून-व्यवस्था की परवाह न करते हुए अपना रोब चलाना है, समय के अनुकूल अपनी निष्ठा का प्रदर्शन करते हुए अपनी गाड़ी का झंडा बदल लेना चाहिए। डंडा यानी व्यवस्था तो वही रहेगी, सत्ता के मालिकों के सतही बदलाव के प्रतीक झंडे को बदल लीजिए। तब आपको लाल बत्ती को धता बताने, हूटर बजाने, साइड न देने वालों को थपड़ियाने, 'नो पार्किंग' को 'ईजी पार्किंग' बनाने और टोल टैक्स न देने की सुविधाएँ मिल जाएँगी। चुनावों से जुड़ी विद्रूपताओं, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रष्टाचार, संस्थाओं के क्षरण और तथाकथित आश्रमों में अनाचार जैसे विविध विषयों पर व्यंग्य-प्रसंग हैं। पिछले कुछ वर्षों में घटी अनाचार-भ्रष्टाचार से जुड़ी घटनाओं की झलक भी अनेक व्यंग्य-रचनाओं में मिल जाती है। लेखक ने अपनी बात प्रभावी तरीकों से कहने के लिए प्रायः प्राचीन कथाओं, इतिहास से जुड़े और अन्य चर्चित प्रसंगों का सहारा लिया है और उन्हें नए संदर्भों में प्रस्तुत कर व्यंग्य की सृष्टि की है। उनकी प्रस्तुति में लंबे लेखन-अनुभव की प्रौढ़ता है।

‘भारत में जल परिवहन’ पुस्तक को राजभाषा सम्मान

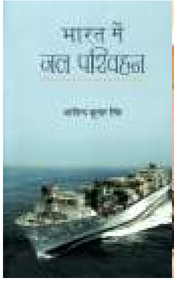

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित और वरिष्ठ पत्रकार और लेखक श्री अरविंद कुमार सिंह द्वारा लिखित पुस्तक ‘भारत में जल परिवहन’ को राजभाषा सम्मान प्रदान किया गया। केंद्रीय पत्तन, पोत परिवहन और जलमार्ग मंत्री श्री सर्बानंद सोनोवाल ने राजभाषा शील्ड एवं मौलिक पुस्तक योजना के तहत विज्ञान भवन में आयोजित मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति की बैठक में अरविंद कुमार सिंह को सम्मानित किया। इस समारोह में कई सांसद, मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी और सभी बंदरगाहों के प्रमुख अधिकारी मौजूद थे। यह पुस्तक भारत में नौवहन के गौरवशाली अतीत के साथ मौजूदा परिदृश्य में भविष्य की संभावनाओं पर प्रकाश डालती है।

ज्ञान ही हमें वैश्विक नागरिक बनाता है

–न्यास-निदेशक

कोशिश कर हल निकलेगा, आज नहीं तो कल निकलेगा।
अर्जुन के तीर सा साध, मरुस्थल से जल निकलेगा।।

उक्त पंक्तियों के साथ राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने दिल्ली पब्लिक स्कूल, रोहिणी में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए दिनचर्या में पुस्तकों के पठन पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि ज्ञान ही हमें वैश्विक नागरिक बनाता है। वे वार्षिक सम्मान समारोह में संबोधित कर रहे थे।

न्यास-निदेशक द्वारा पुस्तक विमोचन

07 अगस्त, 2023 को डॉ. रुचि सेठ और सुतापा बसु द्वारा लिखित पुस्तक ‘अ स्कोर एंड मोर : क्रानिकल ऑफ चेंज एंड चीयर’ का विमोचन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के निदेशक श्री युवराज मलिक ने किया। उन्होंने समाज में शिक्षकों की आवश्यक भूमिका पर जोर दिया और बताया कि कैसे उनकी भूमिका राष्ट्र निर्माताओं से लेकर वैश्विक नागरिकों के रचनाकारों तक विकसित हुई है। उन्होंने इस विचार को दोहराया कि एक शिक्षक के शब्द छात्रों के लिए एक सार्वभौमिक सत्य हैं और इस प्रकार, शिक्षक सार्वभौमिक परिवर्तन के उत्प्रेरक हो सकते हैं। इसके साथ ही उन्होंने पढ़ने के महत्व पर भी जोर दिया और प्रतिदिन 10 पेज पढ़ने, एक पेज लिखने और एक मिनट बोलने का अभ्यास करने को भी कहा।

‘अंतराष्ट्रीय साहित्य महोत्सव’ में न्यास-अध्यक्ष का उद्‌बोधन

अंतरराष्ट्रीय साहित्य महोत्सव ‘उन्मेष’ 2023 के उद्‌घाटन सत्र में ‘रचनात्मकता बढ़ाने वाली शिक्षा’ पर राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने कहा कि शिक्षा को रचनात्मकता से अलग नहीं किया जा सकता है और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। जहाँ शिक्षा परिधि को केवल क्लासरूम तक सीमित नहीं किया गया है, बल्कि औपचारिक शिक्षा के पूर्व की शिक्षा की रचनात्मकता को भी स्कूल पूर्व शिक्षा के रूप में विशेष रूप से सम्मिलित किया गया है।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में ध्वजारोहण

भारत के 77वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के मुख्यालय में न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने ध्वजारोहण कर देशवासियों को शुभकामनाएँ दीं।

स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर ‘मेरी माटी मेरा देश’ अभियान के तहत, न्यास के सभी कर्मचारियों ने ‘पंच प्रण’ की शपथ ली और ‘हर घर तिरंगा’ कार्यक्रम में हिस्सा लिया।

प्रगति मैदान

शिवानी कनोडिया द्वारा 'लाइब्रेरी कैन बी फन टू' पर एक रोमांचक कहानी कहने की कार्यशाला आयोजित हुई। इस कार्यशाला का उद्‌देश्य बच्चों को अपनी समस्याओं को हल करने के लिए तैयार करना था ताकि वे जीवन में बेहतर निर्णय ले सकें।

संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 05-06 अगस्त, 2023 को 'फेस्टिवल ऑफ लाईब्रेरीज 2023' आयोजित किया गया। इस दौरान मॉडल विलेज लाईब्रेरी, पारंपरिक और डिजिटल प्रारूपों, बच्चों और वयस्कों के लिए कार्यशालाओं के साथ-साथ सर्वश्रेष्ठ भारतीय साहित्य को लाने का प्रयास किया गया। इस दौरान राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के मंडप में कई आयोजन किए गए।

'लोकगीत : जीवित परंपराओं की रक्षा' के बारे में स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग, लिटरेचर एंड कल्चरल स्टडीज में लोकगीत इकाई से प्रो. साधना नैथानी ने लोककथाओं के राष्ट्रीय अभिलेखागार के विचार का प्रस्ताव रखा। 'मॉडल विलेज लाइब्रेरी प्रोजेक्ट' के तहत राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की 'बौद्धिक विरासत' बनाने की इस अनूठी पहल की दिशा में एक कदम है।

'फेस्टिवल ऑफ लाईब्रेरीज 2023' के दौरान राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के मंडप में प्रधानमंत्री युवा लेखकों—आशीषा चक्रवर्ती, आरुषि माहेश्वरी, सुदर्शना झा और सुशांत भारती के साथ एक संवाद सत्र आयोजित किया गया। इस सत्र में महत्वाकांक्षी लेखकों ने भाग लिया, जिन्होंने 'पुस्तक लिखने के लिए विषयों का चयन कैसे करें' पर बातचीत की।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अनुभाग 'राष्ट्रीय बाल साहित्य केंद्र' की संपादक श्रीमती कंचन वांचू शर्मा द्वारा 'लाइब्रेरी के प्रबंधन की कला' पर एक संवाद सत्र न्यास के मंडप में आयोजित किया गया जिसमें उन्होंने लाइब्रेरी में आने वाले रुझानों पर चर्चा की। उन्होंने सार्वजनिक पढ़ने के स्थानों को बेहतर बनाने के समाधान भी दिए।

कहानी-वाचन कार्यशाला

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, द्वारा आईटीपीओ में दूसरे अखिल भारतीय शिक्षा समागम में शिक्षकों के लिए 'कहानी-वाचन कार्यशाला' का आयोजन किया गया। कार्यशाला में विनीता जुत्श ने किसी भी विषय को मनोरंजक तरीके से पढ़ाने के लिए नई शिक्षा नीति शिक्षण पद्धति के हिस्से के रूप में कहानी कहने की तकनीकों पर शिक्षकों का मार्गदर्शन किया।

29 जुलाई से 02 अगस्त, 2023 तक प्रगति मैदान, नई दिल्ली में आयोजित 'दिल्ली पुस्तक मेले' में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत।

एफआईपी द्वारा आयोजित 'इंडियन पब्लिशर्स कॉन्फ्रेंस 2023' में 'कंट्रीब्यूशन ऑफ पब्लिशर्स इन मेकिंग इंडिया अ बुक रीडिंग नेशन एंड नॉलेज सोसायटी' विषय पर व्याख्यान देते राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के निदेशक श्री युवराज मलिक।

27 से 29 जुलाई, 2023 तक उदयपुर में चलने वाले 'उदयपुर पुस्तक मेले' में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के स्टॉल में पठन अभिरुचि दिखाती पारंपरिक परिधान में राजस्थान की महिलाएँ।

भूल सुधार

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि मई-जून 2023 अंक में त्रुटिवश 'प्रेम से परिवार तक' पुस्तक के समीक्षक श्री फूलचंद मानव के स्थान पर डॉ. सुशीलकुमार फुल्ल का नाम अंकित हो गया है। चूक के लिए खेद है।

पुस्तकें मिलीं

बात आँखों की

रेखा भारती मिश्रा

प्रस्तुत पुस्तक में कुल 87 गजलें हैं। इन गजलों में जिंदगी को सँवारने की बातें की गई हैं तो ख्वाबों के महल बनाने की नसीहत भी है। बाधाओं से लड़ने की पुरजोर कोशिश है तो रूठने और मनाने की चाहत है। संग्रह में जिंदगी से जुड़ी हर बात पर खूबसूरत पंक्तियाँ गढ़ लेने का अनूठा हुनर है गजलकारा में।

श्वेतवर्णा प्रकाशन, नोएडा, उत्तर प्रदेश।

पृ. 88; रु. 199.00

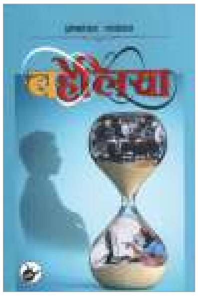

बहेलिया

प्रभाशंकर उपाध्याय

प्रस्तुत उपन्यास बैंक कर्मियों के जीवन से जुड़ी रोचक घटनाओं को एक सुगठित सूत्र में पिरोता है। उपन्यास में महज बैंकिंग ही नहीं, आम आदमी के रोजमर्रा के जीवन में उठने वाले छोटे-छोटे सवाल, छोटी-छोटी हसरतें, आशंकाएँ एवं आकांक्षाएँ भी शामिल हैं। लेखक ने उपन्यास में विविध प्रसंगों के जरिए दिलचस्प रूपकों को रचने का सफल प्रयास किया है।

इंक पब्लिकेशन, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

पृ. 202; रु. 250.00

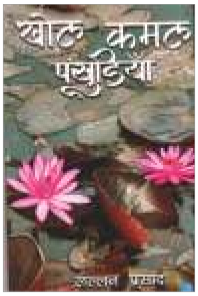

खोल कमल पंखुड़ियाँ

लल्लन प्रसाद

प्रस्तुत काव्य संग्रह में ज्यादातर प्रकृति पर आधारित कविताएँ हैं। ये कविताएँ अंतर्मन को छूने वाली तो हैं ही मन को सुकून भी देती हैं। कुछ लघु कविताएँ हैं एवं कुछ अनूदित कविताएँ भी हैं। कविताओं में अनूठा सौंदर्य है तो जीवन के अनुभवों का पिटारा भी इनमें समाहित है। कवि मन की व्यथा भी इन कविताओं में यत्र-तत्र झलकती है।

ब्लूरोज पब्लिशर्स, नोएडा, उत्तर प्रदेश।

पृ. 108; रु. 170.00

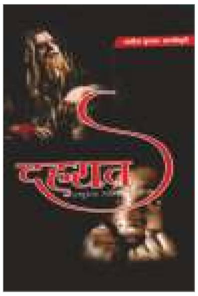

दहशत

सतीश कुमार अल्लीपुरी

प्रस्तुत संग्रह में 50 लघुकथाएँ हैं। ये लघुकथाएँ आम जन-जीवन से जुड़े प्रसंगों पर आधारित हैं। प्रत्येक लघुकथा सशक्त संदेश देती है। इन्हें पढ़कर पाठक के मन में गहरी संवेदना उत्पन्न होती है। कई प्रसंग तो ऐसे हैं जो लगते हैं कि हमारी स्वयं की ही आपबीती हैं। सभी लघुकथाएँ एक तय शब्द-सीमा में हैं, जो कि लघुकथा के वास्तविक मानक का पालन करती हैं।

समदर्शी प्रकाशन, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

पृ. 112; रु. 150.00

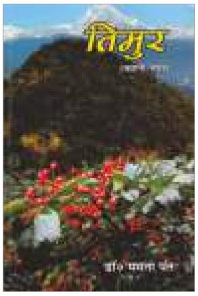

तिमुर

डॉ. ममता पंत

प्रस्तुत कहानी संग्रह में 10 कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ अपने पात्रों के माध्यम से जीवन में संघर्ष से सफलता प्राप्त करने पर बल देती हैं। लेखिका ने इन कहानियों में जीवन की वास्तविकता, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ, युवा हताशा, स्त्री संघर्ष एवं उससे उत्पन्न संत्रास आदि को चित्रित कर पाठकों के अंतर्मन को छूने का सफल प्रयास किया है।

रुद्र प्रकाशन, बाँदा।

पृ. 100; रु. 250.00

पग-पग के साथी : सुभाषित विचार

डॉ. निशा नंदिनी भारतीय

प्रस्तुत पुस्तक में कुल 335 सुभाषित शब्द समूह दिए गए हैं। ये वाक्य अंतरतम में गहरे उतरकर अपनी छाप अवश्य छोड़ते हैं, जिससे जीवन में सकारात्मक परिवर्तन होता है। इन विचारों को पढ़कर पूरे दिन को ऊर्जा से भरपूर बनाया जा सकता है। इन वाक्यों से प्रेरित होकर सफलता की सीढ़ियाँ सरलता से चढ़ी जा सकती हैं।

शब्द डाट इन, दरियागंज, नई दिल्ली।

पृ. 116; रु. 215.00

न्यास के प्रगति-पथ पर सहयोग का संकल्प, नए अध्यक्ष का आगमन

"राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत का 'लोगो' पारंपरिक ज्ञानतंत्र और 21वीं सदी के युवाओं की उम्मीदों का सम्मिश्रण है, जो सभी को एक सूत्र में बाँधता है। यह सूत्र है ज्ञान का, सूचना से ज्ञान मिलता है और ज्ञान से मनीषा। मैं आत्मविश्वास से कहता हूँ कि इस संस्था से संबद्ध अतीत को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी का मैं हरसंभव निर्वहन करूँगा।" उक्त उद्गार प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे के थे, जिन्होंने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष के रूप में पदभार ग्रहण किया। उन्होंने प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा का स्थान ग्रहण किया। यह न्यास के लिए सुखद अवसर था कि इस आयोजन में निवृत्तमान अध्यक्ष प्रो. गोविंद शर्मा भी उपस्थित थे।

कार्यक्रम के प्रारंभ में न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत इस समय देश की श्रेष्ठ संस्थाओं में से एक है। प्रो. गोविंद शर्मा ने अपने साढ़े चार साल के कार्यकाल में विशिष्ट मार्गदर्शन द्वारा संस्था को नई ऊँचाई दी है। उनके मार्गदर्शन के कारण ही कोविड में हमारा कार्यालय बंद नहीं हुआ और उस समय भी हम नई पुस्तकों के प्रकाशन की योजनाओं आदि पर कार्य करते रहे। श्री मलिक ने कहा कि नए अध्यक्ष और निवृत्तमान अध्यक्ष दोनों ही ऐसे शिक्षाविद् हैं, जिन्होंने नई शिक्षा नीति के निर्माण और क्रियान्वयन में योगदान दिया है। श्री मलिक ने नई शिक्षा नीति के अनुरूप त्वरित द्विभाषी पुस्तकों का प्रकाशन, नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला का अत्याधुनिक स्वरूप, प्रधानमंत्री युवा लेखक योजना के अंतर्गत पुस्तकों का प्रकाशन, आजादी का अमृत महोत्सव पुस्तक श्रृंखला आदि उपलब्धियों पर प्रकाश डाला।

इस अवसर पर नवागंतुक अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे ने युवाओं द्वारा अपनी भावना प्रकट करने के लिए ईमोजी के इस्तेमाल का उल्लेख करते हुए कहा कि ईमोजी के चित्र हमारी भावनाओं को शब्दों की तरह प्रकट नहीं कर सकते हैं। उन्होंने मुंबई में हुए एक सर्वे का उल्लेख किया, जिसमें बताया गया था कि 70 प्रतिशत युवा अब पाठ्यपुस्तक या संदर्भ सामग्री के स्थान पर इंटरनेट पर निर्भर हैं। प्रो. मराठे ने कहा कि नई पीढ़ी को पुस्तक से जोड़ना एक चुनौती है।

निवृत्तमान अध्यक्ष प्रो. गोविंद शर्मा ने इस अवसर पर कहा कि वे जब यहाँ आए थे तो एक परिवार भाव से आए थे और उसी भाव से विदा ले रहे हैं। उन्होंने न्यास के अधिकारियों की कार्यक्षमता को सकारात्मक ऊर्जा और रचनात्मकता की प्रशंसा की।

प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने 21 फरवरी, 2019 को न्यास-अध्यक्ष का कार्यभार सँभाला था और 15 अगस्त, 2023 तक अपनी सेवाएँ दीं। अपने कार्यकाल के दौरान, प्रो. शर्मा 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' के अनुरूप राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के विकास के लिए राष्ट्रीय संचालन समिति का भी हिस्सा थे। उन्होंने 'अबू धाबी अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला-2019' और 'पेरिस पुस्तक महोत्सव-2022' के दौरान भारतीय प्रतिनिधिमंडल का भी नेतृत्व किया।

कार्यक्रम के अंत में मुख्य संपादक संयुक्त निदेशक श्रीमती नीरा जैन ने आभार व्यक्त किया। इस आयोजन में हरियाणा लोक सेवा आयोग की सदस्य सुश्री ममता यादव भी उपस्थित थीं।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के नए अध्यक्ष

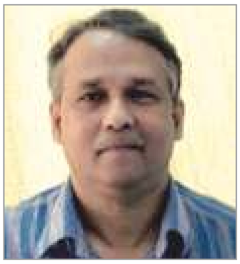

माननीय श्री मिलिंद सुधाकर मराठे भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के नए अध्यक्ष नियुक्त किए गए। 19 फरवरी, 1962 को जन्मे श्री मिलिंद सुधाकर मराठे जी पिछले 31 वर्षों से विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य से जुड़े रहे हैं। वे वर्ष 1991 से एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में के.जे. सोमैया कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, मुंबई में स्नातक एवं परास्नातक के विद्यार्थियों के लिए शिक्षण कार्य करते रहे हैं।

आपके महत्वपूर्ण शोध आलेख, लेख प्रतिष्ठित जर्नल में प्रकाशित होते रहे हैं। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ट्रेंड इन रिसर्च एंड डेवेलपमेंट के जुलाई-अगस्त 2016 के अंक में 'सर्वे ऑफ आइसलैंडिंगक डिटेक्सन स्कीम्स' शीर्षक से शोध आलेख प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त बी.ई. कोर्स के थर्ड सेमेस्टर के लिए एक पुस्तक 'इलेक्ट्रिक नेटवर्क : अ टेक्स्ट बुक' नंदू प्रकाशन से प्रकाशित है।

प्रो. मराठे ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के प्रारूपण कमेटी में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के सदस्य के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्हें ऑस्ट्रेलिया इंडिया इंस्टीट्यूट, यूनिवर्सिटी ऑफ मेलबर्न ने आठ एवं नौ दिसंबर, 2019 को ऑस्ट्रेलिया इंडिया लीडरशीप डायलॉग के कॉन्फ्रेंस में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। इसके अतिरिक्त आरएमपी इंटरनेशनल के आमंत्रण पर अफगानिस्तान में 29 अप्रैल, 2002 से पाँच मई, 2002 तक उच्च तकनीकी शिक्षा के विशेषज्ञ के रूप में कार्य किया। प्रो. मराठे इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग इंडिया के सदस्य एवं इंडियन सोसाइटी ऑफ टेक्निकल एजुकेशन, नई दिल्ली के आजीवन सदस्य हैं। प्रो. मराठे एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी निरंतर महत्वपूर्ण कार्य करते रहे हैं। वर्तमान में आप मुंबई के 'विद्यार्थी निधि ट्रस्ट' नामक एनजीओ के महासचिव के रूप में विद्यार्थियों के संपूर्ण विकास के लिए कार्य कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त आप 'इनविरो विजिल' नामक ठाणे के आधृत एनजीओ में महासचिव के रूप में भी पर्यावरण की समस्याओं पर कार्य कर रहे हैं।

साहित्यिक गतिविधियाँ

देश में पुस्तक लेखन की परंपरा प्राचीन कला का अभिन्न अंग है—बी.डी. मिश्रा

“भारत की पुस्तक लेखन परंपरा साहित्य और प्राचीन कला का प्रमुख अंग रही है। पुस्तकों के माध्यम से ही समाज आगे बढ़ा है।” उपरोक्त उद्बोधन लद्दाख के माननीय उपराज्यपाल ब्रिगेडियर बी.डी. मिश्रा ने ‘लद्दाख पुस्तक महोत्सव’ के उद्घाटन सत्र में व्यक्त किया। यह महोत्सव 12 से 16 जुलाई, 2023 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत और लद्दाख प्रशासन के संयुक्त तत्वावधान में ‘न्यू मल्टीपरपज इंडोर स्टेडियम’ (एनडीएस मेमोरियल स्पोर्ट्स ग्राउंड), लेह में आयोजित किया गया था। माननीय उपराज्यपाल ने न्यास द्वारा प्रकाशित पुस्तकों और आयोजन की सराहना की। उन्होंने कहा कि पूरा लद्दाख इस साहित्यिक आयोजन में आए और साहित्य का लाभ उठाए। ऐसे आयोजन साहित्य और संस्कृति का आदान-प्रदान करने के विशेष अवसर होते हैं।

इस अवसर पर अतिथियों एवं दर्शकों का स्वागत करते हुए राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने कहा कि पुस्तकें ज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र विश्वसनीय माध्यम हैं। उन्होंने बताया कि अपने साहित्य और संस्कृति को देश के अन्य हिस्सों में स्थापित करने के लिए और अधिक पुस्तक महोत्सव आयोजित किए जाएँगे।

उद्घाटन सत्र में मंच पर लेह और कारगिल के दो प्रतिष्ठित लेखकों में से श्री जामयांग ग्यालत्सन ने कहा कि यह पुस्तक महोत्सव उन युवा पाठकों को प्रोत्साहित करेगा और उनके क्षितिज को व्यापक बनाएगा जो पुस्तकों और साहित्य के प्रति उत्साही हैं। मो. सादिक हरदासी ने मुद्रित किताबें और डिजिटल किताबें पढ़ने के बीच के अंतर के बारे में बात की।

एलएएचडीसी के अध्यक्ष, एडवोकेट त्याशी ग्यालसन ने इस पहल के लिए राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत को धन्यवाद दिया और इसका समर्थन करने के लिए लद्दाख के प्रशासन को भी धन्यवाद दिया। उन्होंने यह भी कहा कि लद्दाख पुस्तक महोत्सव जैसे अवसर, लद्दाख के उभरते लेखकों और युवा पाठकों को सहायता प्रदान करेंगे।

न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने धन्यवाद ज्ञापित करते हुए पिछले 66 वर्षों से किताबों और पढ़ने को बढ़ावा देने के लिए न्यास द्वारा आयोजित विभिन्न गतिविधियों के बारे में बात की। उन्होंने कहा कि एक किताब आपकी जीवन-शैली का दर्जा होनी चाहिए, न कि आपका फोन। एक किताब आपकी जिंदगी बदल सकती है। इसलिए इस पुस्तक महोत्सव में आएँ और वह पुस्तक चुनें जो आपका जीवन बदल दे!

उद्घाटन सत्र के बाद कहानी वाचन कार्यक्रम आयोजित किया गया। साथ ही बच्चों के लिए गतिविधियाँ संपन्न की गईं। इसके बाद विभिन्न प्रतिष्ठित वक्ताओं द्वारा साहित्य, पर्यावरण और इतिहास पर साहित्यिक सत्र आयोजित किए गए।

पूरे उत्सव के दौरान, विभिन्न क्षेत्रों के प्रसिद्ध लेखकों और विशेषज्ञों के संवाद सत्र और विचारोत्तेजक पैनल चर्चाएँ आयोजित हुईं। युवा दर्शकों को मंत्रमुग्ध करने वाले कहानीवाचन सत्रों से लेकर पत्र लेखन की लुप्त होती कला को पुनर्जीवित करने वाली कार्यशालाओं, रचनात्मकता को बढ़ावा देने और पढ़ने को बढ़ावा देने वाली गतिविधियों का आयोजन किया गया। इस दौरान, 40 से अधिक वक्ताओं ने भाग लिया और 30 से अधिक सत्रों का आयोजन किया गया।

लद्दाख पुस्तक उत्सव की अवधि के दौरान क्षेत्रीय भाषा में साहित्य को बढ़ावा देने के लिए 13 से 15 जुलाई, 2023 तक त्रिदिवसीय अनुवाद कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में न्यास द्वारा प्रकाशित आठ पुस्तकों का अनुवाद बोटी भाषा में किया गया। इस अवसर पर न्यास के हिंदी भाषा के संपादक श्री पंकज चतुर्वेदी ने अनुवादकों को अनुवाद की चुनौतियों के बारे में जानकारी देते हुए स्मरणीय बिंदुओं को रेखांकित किया। कार्यशाला में अनूदित पुस्तकों का अनुवाद और संपादन कर डम्मी बनाने का कार्य संपन्न किया गया।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

छत्तीसगढ़ का लोक-पुराण

मनोमय गाँवों का बहुरूप

राहुल कुमार सिंह

प्रस्तुत पुस्तक में छत्तीसगढ़ की भाषा के इतिहास, परंपरा और वहाँ के गाँवों के नामकरण पर चर्चा की गई है। पुस्तक में कुल छह भागों में अध्यायों का विभाजन किया गया है। इनमें छत्तीसगढ़ की आंचलिकता का व्यापक फलक, अखिल भारतीय और वैश्विक संदर्भों के साथ अंततः समग्र मानवता का रूप-प्रतिरूप है।

पृ. 130; रु. 210.00

गुरु तेग बहादुर

डॉ. भजन सिंह 'ज्ञानी'

अनुवाद : **सुभाष नीरव**

प्रस्तुत पुस्तक में कुल 19 अध्यायों में गुरु तेग बहादुर के जीवन परिचय से लेकर उनके समस्त कार्यकलापों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें बताया गया है कि गुरु तेग बहादुर का संपूर्ण जीवन ही बड़ा विचित्र और घटनाओं से भरपूर रहा है। उनसे संबंधित कुल 45 तीर्थस्थलों की जानकारी भी पुस्तक के एक अध्याय में दी गई है।

पृ. 180; रु. 230.00

गुलाम गौस खाँ

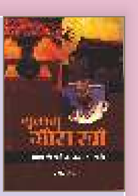

झाँसी की रानी का बहादुर तोपची

शमीम शेख

प्रस्तुत पुस्तक में झाँसी की रानी के बहादुर तोपची 'गुलाम गौस खाँ' के जीवन परिचय से लेकर उनकी विभिन्न भूमिकाओं पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के कुल आठ अध्यायों में विभिन्न घटनाक्रमों का वर्णन किया गया है। इसमें 'मंदिरों की रक्षा में गुलाम गौस खाँ की शहादत' जैसे शीर्षक के माध्यम से उनकी देशभक्ति और समाज-सेवा पर प्रकाश डाला गया है।

पृ. 64; रु. 120.00

बापू की महिला ब्रिगेड

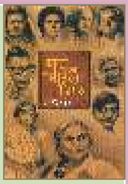

अरविंद मोहन

इस पुस्तक में राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी के साथ सहयोग देने वाली 75 महिला नायिकाओं के उत्कृष्ट कार्यों का उल्लेख है। आंदोलन से जुड़ी महिलाएँ हर स्तर पर बात करती हैं, लड़ती हैं और जेल की यातनाएँ भी सहती हैं। ये महिलाएँ एक से बढ़कर एक ऊर्जावान साबित हुई हैं, जिनका संघर्षपूर्ण जीवन देश और समाज के लिए हमेशा प्रेरणाप्रद रहेगा।

पृ. 252; रु. 345.00

भारतीय प्रज्ञा

परंपरा का पुण्य प्रवाह

संजीव कुमार शर्मा

इस पुस्तक में कुल तीन अध्याय हैं, जिनमें ज्ञान की महत्ता, आध्यात्मिक व लौकिक विधाओं का समावेश है। भारत में सत्य के अनुसंधान की अजस्र धारा का पुण्य प्रवाह सदैव दृश्यमान रहता आया है। ज्ञान परंपरा की इस अंतःसलिला में भारतीय प्रतिभा का प्रत्येक क्षेत्र रससिक्त हुआ है। इसी भारतीय प्रज्ञा की परंपरा के पुण्य प्रवाह के प्रमुख आयामों का समावेश इस पुस्तक में किया गया है।

पृ. 162; रु. 225.00

चंबल

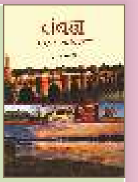

संस्कृति एवं विरासत

देव श्रीमाली

इस पुस्तक में चंबल घाटी से जुड़ी महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया गया है। इसमें चंबल की समृद्ध विरासत का वर्णन किया गया है। चंबल में पुरातत्व और पर्यटन के लिए खजाना भरा पड़ा है। शैव मंदिर व मठों और जैन देवालयों की मौजूदगी इसके ठोस साक्ष्य हैं। चंबल के बीहड़ों में भी एक संस्कृति पलती है, जिसमें अनेक रंग हैं।

पृ. 144; रु. 230.00

ककड़िया के भालू

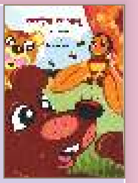

सुधा भार्गव

चित्र : **मित्रारुण हलधर**

प्रस्तुत पुस्तक में 'ककड़िया' नामक भालू का खेल दिखाने वाले के दो भालुओं की रोचक कहानी है, जो बच्चों के मन को गुदगुदाती है। दोनों भालू अलग-अलग स्वभाव के हैं। दोनों भालुओं को शरारत के कारण मधुमक्खियों ने काट लिया। यह रोचक कहानी है।

पृ. 20; रु. 40.00

nbt.india
एक: सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in